मई, 2014

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
महमूद अली खां

महत्वपूर्ण निर्णय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – चालक द्वारा यात्री को यान की छत पर बैठने की अनुमति देना – प्रभाव – जहां चालक ने विधिविरुद्ध रूप से यात्री को यान की छत पर बैठने के लिए अनुज्ञात किया हो वहां चालक का ऐसा कार्य यान को लापरवाही और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के अन्तर्गत आएगा – चालक और स्वामी दुर्घटना के लिए जिम्मेदार हैं ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती खाती और अन्य** 666

संसद् के अधिनियम

भरणपोषण आदेश प्रवर्तन अधिनियम, 1921 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (9)

पृष्ठ संख्या **581 – 724** **(2014) 1 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – मई, 2014 (पृष्ठ संख्या 581 –724)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मई, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
कमबाला नागेश्वर राव **बनाम** केसना बालकृष्ण	581
कल्लनगढ़ी इडतील चैतन विट्टील कुमारन् किडावू और एक अन्य **बनाम** निडूवन्चलील केलोत दामोदरन् नायर और अन्य	585
केन्द्रीय भण्डारण निगम, निर्माण सेल, पनमपिल्ली नगर, कोच्ची **बनाम** वर्गीज के. पुलायत (मृतक) के विधिक प्रतिनिधि और अन्य	613
धूला **बनाम** नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य	702
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती खाती और अन्य	666
प्रेम चन्द और अन्य **बनाम** केशो राम और अन्य	670
बेबी रानी देब (सुश्री) और अन्य **बनाम** मानिक डे और अन्य	657
मेस उदखांजी करीमखांजी तालुकदार और एक अन्य **बनाम** विष्णु भाई गफूर भाई राबड़ी और अन्य	652
राम स्वरूप (मृतक) **मार्फत** विधिक प्रतिनिधि **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य	690
लोकेन्द्र सिंह गुर्जर **बनाम** राजस्थान राज्य और एक अन्य	696
शंकर के विधिक प्रतिनिधि **बनाम** नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 702)	
शादी राम और अन्य **बनाम** कमल दत्त	717
सोमा **बनाम** नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 702)	

संसद् के अधिनियम

भरणपोषण आदेश प्रवर्तन अधिनियम, 1921 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (9)

संपादक-मंडल

श्री प्रेम कुमार मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. विजय नारायण मणि, अधिवक्ता, (पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

प्रो. डा. वैभव गोयल,
लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उत्तराखण्ड)

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 12

वार्षिक : ₹ 135

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940

– धारा 13(घ), 20, 30 और 39 [सपठित ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 29, 39, 41] – मध्यस्थ – पंचाट – आक्षेप – यदि अभिलेख पर के साक्ष्यों से यह साबित होता है कि मध्यस्थ ने पक्षकारों के बीच संविदा के अनुसरण में तथा संबंधित पक्षकारों की समुचित सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् पंचाट दिया है तो ऐसे पंचाट को नैसर्गिक न्याय के अननुपालन करने तथा अपनी अधिकारिता का दुरुपयोग करने या अधिकारिता के बाहर कार्य करने के आधार पर चुनौती दी जा सकती है ।

केन्द्रीय भण्डारण निगम, निर्माण सेल, पनमपिल्ली नगर, कोच्ची बनाम **वर्गीज के. पुलायत (मृतक) के विधिक प्रतिनिधि और अन्य** 613

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – चालक द्वारा यात्री को यान की छत पर बैठने की अनुमति देना – प्रभाव – जहां चालक ने विधिविरुद्ध रूप से यात्री को यान की छत पर बैठने के लिए अनुज्ञात किया हो वहां चालक का ऐसा कार्य यान को लापरवाही और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के अन्तर्गत आएगा – चालक और स्वामी दुर्घटना के लिए जिम्मेदार हैं ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती खाती और अन्य** 666

– धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर – धनराशि – जहां दावेदारों ने अपना पक्षकथन साबित कर दिया हो वहां न्यायालय को प्रतिकर अधिनिर्णीत

पृष्ठ संख्या

करने के लिए विधि के अनुसार ही गुणक लागू करना चाहिए ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती खाती और अन्य** 666

राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956

– धारा 90-ख [सपठित राजस्थान सरकार का परिपत्र सं. 4-5(8)नविवि/3/99 दिनांक 26 मई, 2000 और परिपत्र सं. जी.आर. 6/99/5 दिनांक 14.2.2001] – कृषि भूमि को आवासीय भूमि में परिवर्तित करने के लिए आवेदन – विकास शुल्क – पूर्व परिपत्र के दौरान विकास शुल्क जमा न करना – नए परिपत्र के अनुसार मांग – अपीलार्थीगण अपनी चूक के कारण नए परिपत्र के अनुसार विकास शुल्क जमा करने के लिए जिम्मेदार हैं ।

धूला बनाम **नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य** 702

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 34 – हक़ और क़ब्जे की घोषणा के लिए वाद – वादपत्र में संपत्ति की सर्वेक्षण संख्या उल्लिखित न की जानी – पूर्वतर वादों में न्यायालय द्वारा विवादित संपत्ति सरकार की संपत्ति घोषित की जानी – घोषणात्मक अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता ।

राम स्वरूप (मृतक) मार्फत **विधिक प्रतिनिधि** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 690

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)

– धारा 41 – दृश्यमान स्वामी द्वारा भूमि का अन्तरण

पृष्ठ संख्या

– विक्रय-विलेख के आधार पर भूमि पर अधिकार, हक और हित का दावा – वाद के अभिवचनों में इस बात का उल्लेख न होना कि दृश्यमान स्वामी अर्थात् विक्रेता वास्तविक स्वामी की अभिव्यक्त या विवक्षित सम्मति से संपत्ति का स्वामी था – वादी-क्रेता अधिनियम की धारा 41 के संरक्षण का हक़दार नहीं है ।

बेबी रानी देब (सुश्री) और अन्य बनाम **मानिक डे और अन्य** 657

– धारा 54 [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16)] – धारा 17 – हक़ और क़ब्जे की घोषणा के लिए वाद – संपत्ति अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा क्रय की जानी – विक्रय-विलेख का साक्ष्य में प्रयोग – हक़ और क़ब्जा साबित करने में विफ़लता – घोषणात्मक अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता ।

राम स्वरूप (मृतक) मार्फत **विधिक प्रतिनिधि** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 690

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 और 226 – राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा व्यायाम प्रशिक्षक ग्रेड-III की भर्ती के लिए विज्ञापन – याची की अर्हता विनियमों के अनुसार न होने के कारण चयन से इनकार – याची द्वारा समानता के अधिकार का अवलंब – जहां समानता के आधार पर दावा किए जाने पर यह पाया जाए कि कोई विभेद नहीं किया गया है वहां अनुच्छेद 14 के आधार पर कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता ।

लोकेन्द्र सिंह गुर्जर बनाम **राजस्थान राज्य और एक अन्य** 696

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 226 – राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा व्यायाम प्रशिक्षक की नियुक्ति के लिए विज्ञापन – आवेदन के लिए पात्रता शर्तें – याची का अर्हता प्रमाणपत्र विनियमों के अनुसार न होना – नियुक्ति से इनकार – रिट याचिका – रिट याचिका स्वीकार नहीं की जा सकती ।

लोकेन्द्र सिंह गुर्जर बनाम **राजस्थान राज्य और एक अन्य** 696

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 45 – वचन पत्र के आधार पर धन की वसूली के लिए वाद – विरोधी पक्षकार द्वारा वचन पत्र पर हस्ताक्षरों को विवादित न किया जाना – हस्ताक्षर के समय के निर्धारण के लिए हस्तलेख विशेषज्ञ से जांच कराने के लिए आवेदन – इस संबंध में सुविधा होते हुए भी हस्ताक्षर के समय का अवधारण करना कठिनाईपूर्ण है – अतः ऐसा आवेदन मंजूर नहीं किया जा सकता ।

कमबाला नागेश्वर राव बनाम **केसना बालकृष्ण** 581

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 39, नियम 1 – प्रतिवादी द्वारा अपने मकान के अन्दर सेप्टिक टैंक का निर्माण – टैंक से गंदे पानी का वादी के घर की ओर रिसाव – व्यादेश के लिए वाद – निचले न्यायालयों द्वारा डिक्री – अपील – जहां तथ्यों के आधार पर निम्न न्यायालयों के निष्कर्ष एक जैसे हों वहां अपील में ऐसे निष्कर्षों को उलटकर अपील मंजूर करना सही नहीं है ।

शादी राम और अन्य बनाम **कमल दत्त** 717

– धारा 100 [सपठित मध्य प्रदेश भू-राजस्व संहिता,

पृष्ठ संख्या

1969 की धारा 248] – द्वितीय अपील – वाद भूमि से उन्मूलन द्वारा बेदखली का वाद – प्रतिवादियों का लगभग 40 वर्षों से वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी दर्शित होना – दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों से सम्पुष्टि होना – यदि दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों से यह साबित कर दिया जाता है कि वाद भूमि पर प्रतिवादी लगभग 40 वर्षों से कब्जे सहित स्वामी हैं तो वादी मात्र प्रतिकर की डिक्री पाने के ही हकदार हैं और ऐसे मामलों में उन्मूलन द्वारा कब्जे की डिक्री पारित करना असाम्यिक होगा ।

प्रेम चन्द और अन्य बनाम **केशो राम और अन्य** 670

– धारा 151 और आदेश 39, नियम 1 – घोषणा और व्यादेश के लिए वाद – पुलिस सुरक्षा के लिए आवेदन – इस आधार पर इनकार कि संपत्ति का विनिर्दिष्ट माप नहीं दिया गया है – वादपत्र में सम्पत्ति के विनिर्दिष्ट माप और पहचान का उल्लेख – पुलिस सुरक्षा देने से इनकार किया जाना उचित नहीं है ।

मेस उदखांजी करीमखांजी तालुकदार और एक अन्य बनाम **विष्णु भाई गफूर भाई राबड़ी और अन्य** 652

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956

– धारा 15(1), 2(ख) [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 42, 43 और 46] – वसीयतकर्ता द्वारा एक साथ दो विल निष्पादित करना – इसमें से एक विल को संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होना अभिनिर्धारित करना – इसी के आधार पर दूसरे विल को भी बिना परीक्षा किए संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होना अभिनिर्धारित करना – निर्णय अवैध और अयुक्तियुक्त होना – यदि एक साथ निष्पादित दो विल में से एक की परीक्षा के पश्चात् संदेहास्पद परिस्थितियों

पृष्ठ संख्या

से घिरी होने के कारण अवैध अभिनिर्धारित किया जाता है तो इसी आधार पर दूसरे विल को भी बिना परीक्षा के अवैध अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है – ऐसा अभिनिर्धारित करना न केवल अयुक्तियुक्त अपितु अवैध भी है ।

कल्लनगढ़ी इडतील चैतन विट्टील कुमारन् किडावू और एक अन्य बनाम **निडूवन्चलील केलोत दामोदरन् नायर और अन्य** 585

कमबाला नागेश्वर राव

बनाम

केसना बालकृष्ण

तारीख़ 8 नवंबर, 2013

न्यायमूर्ति एल. नरसिह्मा रेड्डी

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 45 – वचन पत्र के आधार पर धन की वसूली के लिए वाद – विरोधी पक्षकार द्वारा वचन पत्र पर हस्ताक्षरों को विवादित न किया जाना – हस्ताक्षर के समय के निर्धारण के लिए हस्तलेख विशेषज्ञ से जांच कराने के लिए आवेदन – इस संबंध में सुविधा होते हुए भी हस्ताक्षर के समय का अवधारण करना कठिनाईपूर्ण है – अत: ऐसा आवेदन मंजूर नहीं किया जा सकता ।

प्रत्यर्थी ने आवेदक के विरुद्ध तारीख 20 अक्तूबर, 2008 के वचन पत्र के आधार पर कतिपय धनराशि की वसूली के लिए ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, रेपाल्ले के न्यायालय में 2011 का मूल वाद सं. 138 फाइल किया था । यह अभिवाक् किया गया था कि न्यायालय के समक्ष के आवेदक ने प्रत्यर्थी के पिता के हक में वचन पत्र निष्पादित किया था और उसने बार-बार मांग किए जाने पर भी वचन पत्र के अन्तर्गत आने वाली धनराशि का संदाय नहीं किया । प्रतिवादी ने वचन पत्र पर हस्ताक्षर के समय के निर्धारण के लिए आवेदन फाइल किया जो नामंजूर किया गया । अत: वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया । पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – निस्संदेह आवेदन अधिनियम की धारा 45 के अधीन फाइल किया गया है और यह सुज्ञात है कि ऐसे आवेदन वचन पत्र के आधार पर धन की वसूली के लिए वादों में फाइल किए जाते हैं । तथापि, अंतरिम आवेदन में किया गया अनुरोध विशिष्ट है । आवेदक ने वचन पत्र पर अपने

हस्ताक्षर को विवादित न करते हुए भी हस्ताक्षर के समय के निर्धारण की ईप्सा की है । इस संबंध में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न होंगी । यद्यपि इस प्रयोजन के लिए किसी सुविधा के विद्यमान होते हुए भी मात्र हस्ताक्षर के समय का स्वत: अवधारण नहीं किया जा सकता । वर्तमान मामले में स्याही या उससे संबंधित पेन इसके उपयोग से अनेक वर्षों पूर्व निर्मित किए गए हो सकते हैं । यदि स्याही या पेन के निर्माण की तारीख और उस तारीख के बीच जिस समय दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए गए हैं या लिखा गया है, 10 वर्ष का अंतराल हो तो यह नहीं कहा जा सकता कि दस्तावेज स्याही या पेन के निर्माण की तारीख पर निष्पादित या हस्ताक्षरित किया गया है । ऐसा केवल कतिपय न्यायालयिक प्रयोगशाला के मामलों में होता है कि ऐसे प्रश्न सुसंगत बनें । विचारण न्यायालय ने मामले में सही मत व्यक्त करते हुए आवेदन ठीक ही खारिज किया है । यह न्यायालय पुनरीक्षणाधीन आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं है । यदि आवेदक ऐसा चाहता है तो वह अपने आशय को पूरा करने के लिए अपने कब्जे में के साक्ष्य को पेश कर सकता है । (पैरा 7 और 9)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	2012 क्रिमिनल ला जर्नल 1510 (कर्नाटक) : **ईश्वर** बनाम **सुरेश** ।	8

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2013 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 2168.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री पी. जे. विक्टर

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री के. रामा कोटेश्वर राव

न्यायमूर्ति एल. नरसिम्हा रेड्डी – प्रत्यर्थी ने आवेदक के विरुद्ध तारीख 20 अक्तूबर, 2008 के वचन पत्र के आधार पर कतिपय धनराशि की वसूली के लिए ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, रेपाल्ले के न्यायालय में 2011 का मूल वाद सं. 138 फाइल किया था ।

2. यह अभिवाक् किया गया था कि हमारे समक्ष के आवेदक ने प्रत्यर्थी के पिता के हक में वचन पत्र निष्पादित किया था और उसने बार-बार मांग किए जाने पर भी वचन पत्र के अन्तर्गत आने वाली धनराशि का संदाय नहीं किया ।

3. आवेदक ने लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया था । उसके अनुसार उसने वर्ष 2000 में श्री वेंकट रामा राव नामक व्यक्ति द्वारा अनुरोध किए जाने पर एक वचन पत्र पर हस्ताक्षर किए थे और जब वेंकट रामा राव की मृत्यु के पश्चात् प्रत्यर्थी के पिता द्वारा धनराशि की मांग की गई थी तो उसने किस्तों में धनराशि का संदाय कर दिया था । उसने यह अभिवाक् किया कि यद्यपि प्रत्यर्थी के पिता ने उसके द्वारा हस्ताक्षर किए गए वचन पत्र को नष्ट करने का वचन दिया था, तथापि, फर्जी तारीख डालते हुए वर्तमान वाद फाइल किया गया था ।

4. आवेदक ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 45 के अधीन 2012 का अंतरिम आवेदन सं. 518 फाइल किया था जिसमें उसने यह अनुरोध किया कि दस्तावेज पर हस्ताक्षर के समय के निर्धारण के लिए तारीख 20 अक्तूबर, 2008 के वचन पत्र को हस्तलेख विशेषज्ञ को जांच के लिए भेजा जाए ।

5. प्रत्यर्थी द्वारा आवेदन का विरोध किया गया था । विचारण न्यायालय ने तारीख 2 अप्रैल, 2013 के आदेश द्वारा अंतरिम आवेदन खारिज कर दिया । अत: यह पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया है ।

6. आवेदक के विद्वान् काउंसेल श्री पी. जे. विक्टर और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री के. रामा कोटेश्वर राव को सुना ।

7. निस्संदेह आवेदन अधिनियम की धारा 45 के अधीन फाइल किया गया है और यह सुज्ञात है कि ऐसे आवेदन वचन पत्र के आधार पर धन की वसूली के लिए वादों में फाइल किए जाते हैं । तथापि, अंतरिम आवेदन में किया गया अनुरोध विशिष्ट है । आवेदक ने वचन पत्र पर अपने हस्ताक्षर को विवादित न करते हुए भी हस्ताक्षर के समय के निर्धारण की ईप्सा की है । इस संबंध में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न होंगी । यद्यपि इस प्रयोजन के लिए किसी सुविधा के विद्यमान होते हुए भी मात्र हस्ताक्षर के समय का स्वत: अवधारण नहीं किया जा सकता । वर्तमान मामले में स्याही या उससे

संबंधित पेन इसके उपयोग से अनेक वर्षों पूर्व निर्मित किए गए हो सकते हैं । यदि स्याही या पेन के निर्माण की तारीख और उस तारीख के बीच जिस समय दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए गए हैं या लिखा गया है, 10 वर्ष का अंतराल हो तो यह नहीं कहा जा सकता कि दस्तावेज स्याही या पेन के निर्माण की तारीख पर निष्पादित या हस्ताक्षरित किया गया है । ऐसा केवल कतिपय न्यायालयिक प्रयोगशाला के मामलों में होता है कि ऐसे प्रश्न सुसंगत बनें । विचारण न्यायालय ने मामले में सही मत व्यक्त करते हुए आवेदन ठीक ही खारिज किया है ।

8. आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित **ईश्वर** बनाम **सुरेश**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है । तथापि, यह मामला दांडिक विचारण से संबंधित था जहां मानदंड पूर्णतया भिन्न हैं ।

9. यह न्यायालय पुनरीक्षणाधीन आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं है । यदि आवेदक ऐसा चाहता है तो वह अपने आशय को पूरा करने के लिए अपने कब्जे में के साक्ष्य को पेश कर सकता है ।

10. तद्नुसार सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है और आवेदक को लिखित कथन में अपना अभिवाक् उठाने के लिए और साबित करने के लिए स्वतंत्रता दी जाती है ।

11. इस पुनरीक्षण आवेदन में फाइल किए गए प्रकीर्ण आवेदन का भी निपटान किया जाता है ।

12. खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

---

[1] 2012 क्रिमिनल ला जर्नल 1510 (कर्नाटक).

कल्लनगढ़ी इडतील चैतन विट्टील कुमारन् किडावू और एक अन्य

बनाम

निडूवन्चलील केलोत दामोदरन् नायर और अन्य

तारीख 28 फरवरी, 2013

न्यायमूर्ति एस. एस. सतीशचन्द्रन

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 – धारा 15(1), 2(ख) [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 42, 43 और 46] – वसीयतकर्ता द्वारा एक साथ दो विल निष्पादित करना – इसमें से एक विल को संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होना अभिनिर्धारित करना – इसी के आधार पर दूसरे विल को भी बिना परीक्षा किए संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होना अभिनिर्धारित करना – निर्णय अवैध और अयुक्तियुक्त होना – यदि एक साथ निष्पादित दो विल में से एक की परीक्षा के पश्चात् संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होने के कारण अवैध अभिनिर्धारित किया जाता है तो इसी आधार पर दूसरे विल को भी बिना परीक्षा के अवैध अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है – ऐसा अभिनिर्धारित करना न केवल अयुक्तियुक्त अपितु अवैध भी है ।

वर्तमान मामले में, प्रथम प्रत्यर्थी/वादी, स्वर्गीय कृष्णनन् नायर, जो उसकी माता अर्थात् मथु अम्मा से पूर्व-मृत है, का भाई है । विभाजन के लिए वाद में सम्पत्तियों के 9 मद सम्मिलित हैं । मद सं. 1 पर कृष्णनन् नायर, उसकी माता, वादी और एक अन्य भाई (रमन नायर), ने एक साथ समनुदेशन द्वारा अधिकार प्राप्त किया था और उसके बाद भाइयों में से एक रमन नायर ने अपने अधिकार को कृष्णनन् नायर के पक्ष में अवमुक्त कर दिया था । कृष्णनन् नायर ने लक्ष्मी अम्मा के साथ विवाह किया और उसकी संतानरहित मृत्यु होने पर मद सं. 1 में उसके अधिकार बराबर हिस्सों में उसकी माता और लक्ष्मी अम्मा में न्यागत हो गए थे । शेष मद सं. 2 से 9, जो सभी कृष्णनन् नायर से संबंधित थे, उसकी विधवा और उसकी माता में उत्तराधिकार द्वारा बराबर हिस्सों में न्यागत हो गए । मथु अम्मा, माता के कृष्णनन् नायर की सम्पत्तियों में 1/2 अधिकार उसकी मृत्यु होने पर, उत्तराधिकार द्वारा उसके विधिक उत्तराधिकारियों और उसके बच्चों

वादियों और प्रतिवादी सं. 2 से 4 और एक अन्य पुत्र रमन नायर, जिसकी अपनी माता से पूर्व मृत्यु हो गई थी, के बच्चों और वाद के प्रतिवादी सं. 5 से 7 में न्यागत हो गए । प्रथम प्रतिवादी का वाद लम्बित रहा और उसके विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिवादी सं. 8 से 10 के रूप में अभिवाचित किया गया । वादी ने मद सं. 1 जिसमें 1/4 हिस्से का अधिकार सम्मिलित था, पर दावा किया जो उसने उस सम्पत्ति में अर्जित किया था और विभाजन तथा पृथक् कब्जे के लिए वाद पत्र विनिर्दिष्ट हिस्से और मात्रा के अनुसार अन्य मदों में भी हिस्से का दावा किया । द्वितीय प्रतिवादी एकपक्षीय बना रहा । प्रतिवादी सं. 1 और 3 से 7 ने अपने हिस्सों के विभाजन की ईप्सा करते हुए वाद पत्र का समर्थन करते हुए संयुक्त लिखित कथन फाइल किया किन्तु उन्होंने यह दलील दी कि वे उस वादी और द्वितीय प्रतिवादी से अन्तःकालीन लाभ पाने के हकदार हैं, जिन्होंने समुचित आय होने का कथन किया है । उन्होंने सम्पत्ति का विभाजन होने पर अपने हिस्से के निबंधनों में पृथक् आबंटन के लिए न्यायालय शुल्क का भी संदाय किया है । प्रतिवादी सं. 8 से 10, जो प्रथम प्रतिवादी के विधिक उत्तराधिकारियों के रूप में प्रतिस्थापित किए गए थे, ने अन्य प्रतिवादियों (डी-1, डी-3 से डी-7) की दलीलों का समर्थन करते हुए एक संयुक्त लिखित कथन फाइल किया । अपीलार्थियों, तृतीय पक्षकारों ने वाद में अतिरिक्त प्रतिवादियों के रूप में स्वयं को पक्षकार बनाए जाने के लिए आवेदन किया यह दलील देते हुए कि स्वर्गीय लक्ष्मी अम्मा ने उनके और दो अन्यों के पक्ष में अपनी सभी सम्पत्तियों का वसीयत करते हुए एक विल निष्पादित की थी । वे वाद में अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 11 और 12 के रूप में पक्षकार बनाए गए थे । उन्होंने यह दलील देते हुए वाद का विरोध किया कि कृष्णनन् नायर और लक्ष्मी अम्मा ने उस वसीयत में निर्दिष्ट एक भवन के सिवाय स्वयं से संबंधित सभी सम्पत्तियों के बारे में एक संयुक्त और पारस्परिक विल प्रदर्श बी-1 निष्पादित की थी । ऐसे विल के निबंधनों में कृष्णनन् नायर की मृत्यु होने के पश्चात् जीवित लक्ष्मी अम्मा कृष्णनन् नायर से संबंधित सभी सम्पत्तियों की अनन्य स्वामी हो गई थी । कृष्णनन् नायर की मृत्यु होने और विल प्रदर्श बी-1 प्रभाव में आने के पश्चात् वाद सम्पत्ति में उसके सभी अधिकार लक्ष्मी अम्मा में न्यागत हो गए । उसके बाद, लक्ष्मी अम्मा ने इन प्रतिवादियों और दो अन्यों के पक्ष में भी अपनी सम्पत्तियों का वसीयत करते हुए एक विल प्रदर्श एक्स-1 निष्पादित किया और उक्त विल को मुहरबंद करते हुए आगे की कार्यवाही के लिए जिला रजिस्ट्रार के समक्ष जमा कर दिया था । उसकी मृत्यु के पश्चात् मुहरबंद

लिफाफा खोला गया और उसकी वसीयत विल प्रदर्श एक्स-1 रजिस्ट्रीकृत किया गया था । उसकी सभी सम्पत्तियों का वसीयतदारों, इन प्रतिवादियों और दो अन्यों के पक्ष में विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन वसीयत किया गया था । मात्र 1/4 हिस्से के संबंध में, जो मथु अम्मा का मद सं. 1 सम्पत्ति में था, उसके लिए ही उसके उत्तराधिकारी वादी और अन्य प्रतिवादी विभाजन के लिए ईप्सा कर सके हैं और एकमात्र उस मद के विभाजन पर ही पक्षकार, जिनमें ये प्रतिवादी सम्मिलित हैं, हिस्से प्राप्त कर सकते हैं, उन्हें कोई आपत्ति नहीं है । अन्य मदों के संबंध में उनमें से किसी वादी और अन्य प्रतिवादियों का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वे पूर्णरूपेण लक्ष्मी अम्मा से संबंधित हैं और उसने इसका व्ययन कर दिया था । इन प्रतिवादियों का पक्षकथन यह है कि सम्पत्तियां विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन है । चूंकि, विल प्रदर्श एक्स-1 में अन्य दो वसीयतदारों को वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया है, इसलिए, इन प्रतिवादियों ने यह दलील दी कि वाद आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है । वाद का अतिरिक्त प्रतिवादियों द्वारा विभिन्न आधारों पर विल प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 की उसके निष्पादकों द्वारा उसके निष्पादन, असलियत और वैधता को आक्षेपित करते हुए विरोध किया गया जैसा कि उपर्युक्त वाद पत्र संशोधित था । वादी ने यह अभिकथित किया कि दोनों विल कूटरचित और गढ़े हुए थे और नामित वसीयतकर्ताओं द्वारा निष्पादित नहीं थे । प्रतिवादियों द्वारा संशोधित वाद पत्र में अतिरिक्त लिखित कथन फाइल किया गया जिसमें उन्होंने वाद सम्पत्तियों के बारे में डी-11 और डी-12 द्वारा किए गए दावे/अधिकार को आक्षेपित करते हुए विलों की असलियत को विवादित किया था । यद्यपि संविवाद के बारे में पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर कतिपय विवाद्यक न्यायनिर्णयन के लिए विरचित किए गए थे किन्तु उनमें से मुख्यतः प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 की असलियत पर केन्द्रित किया गया जिसे वाद का विरोध करते हुए अपीलार्थियों (डी-11 और डी-12) द्वारा स्थापित किया गया था । वादी की ओर से, उसकी परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में हुई थी और प्रदर्श ए-1 से ए-17 चिह्नित किए गए थे और अपीलार्थियों की ओर से प्रतिवादी साक्षी 1 से प्रतिवादी साक्षी 5 की परीक्षा की गई थी और प्रदर्श बी-1 से बी-7 चिह्नित किए गए थे । दस्तावेजों को समन किया गया और प्रस्तुत दस्तावेज, प्रदर्श एक्स-1 से एक्स-6 चिह्नित किए गए । विद्वान् उप-न्यायाधीश ने सामग्रियों का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दोनों विल अपने निष्पादन और असलियत के बारे में कतिपय संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरे हुए हैं और

इन परिस्थितियों के बारे में इनके प्रतिपादकों, अपीलार्थियों द्वारा कोई संतोषप्रद समाधान या स्पष्टीकरण नहीं किया गया है और मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त विवाद्यक अपीलार्थियों के विरुद्ध पाते हुए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि विल प्रदर्श बी-1 और एक्स-1 असली नहीं हैं । दोनों विल, असली नहीं पाए गए, अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 11 और 12 की दलीलों का खंडन करते हुए वादी और अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में उनके द्वारा विनिर्दिष्ट हिस्सों के अनुसार, जिसके ऊपर उन्होंने कोई विवाद या संविवाद नहीं किया है, पारित किया जाता है, यह निर्देश देते हुए कि वे अंतिम डिक्री पारित करने के लिए आवेदन फाइल करें । विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर प्रारम्भिक डिक्री को चुनौती देते हुए अपीलार्थियों द्वारा प्रस्तुत अपील में, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा अभिवचनों और साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने के पश्चात् खारिज कर दिया गया और इस निष्कर्ष से सहमति जताई कि विल प्रदर्श बी-1 और एक्स-1 असली नहीं हैं यह दोहराते हुए कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा इंगित दोनों विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई हैं । वादी और अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में पारित प्रारम्भिक डिक्री को निचले अपील न्यायालय द्वारा अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 11 और 12 की अपील को खारिज करते हए बिना कोई उपांतरण के पुष्टि कर दी गई । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा वादी और अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में मंजूर प्रारम्भिक डिक्री में पारित समवर्ती विनिश्चय के अनुसार ऐसी डिक्री के अधीन विनिर्दिष्ट हिस्सों के अनुसरण में वाद सम्पत्तियों के विभाजन का निर्देश देते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि विल प्रदर्श बी-1 और एक्स-1 असली नहीं हैं और यह विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होने के कारण दूषित हैं, अतएव, यह द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व कि क्या दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए यह निष्कर्ष कि विल प्रदर्श एक्स-1 कतिपय संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है और इस प्रकार यह विल असली और वैध नहीं है, यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस बात की कोई चुनौती नहीं दी गई है कि वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा अपनी सम्पत्तियों का व्ययन करने के लिए वसीयत करते समय स्वस्थचित्त मानसिक दशा और वसीयत करने के लिए पूर्णतया सक्षम थी । यद्यपि वादी ने विल प्रदर्श एक्स-1 में नामित वसीयतदारों में से दो को अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 11 और 12 के रूप में अपीलार्थियों को पक्षकार बनाए जाने के पश्चात् वाद पत्र

में संशोधन किया था, यह अभिकथन करते हुए कि दोनों विल प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 गढ़े गए थे और विल प्रदर्श एक्स-1 न तो लक्ष्मी अम्मा द्वारा निष्पादित किया गया था और न ही उसके द्वारा जमा किया गया था और यह विल वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा किए गए कपट के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया था, इन चुनौतियों पर न तो जोर दिया गया न ही विल प्रदर्श एक्स-1 की असलियत को चुनौती देते हुए उसके बारे में कोई सामग्री प्रस्तुत की गई थी, मात्र इसी प्रश्न से हमारा संबंध है । जहां प्रथमतः कार्यवाही में एक विल चुनौतीधीन होती है और प्रमुख प्रश्न यह उठता है कि क्या यह वसीयतकर्ता की स्वतंत्र इच्छा और स्वेच्छा से विल सम्यक् रूप से निष्पादित की गई है । निस्संदेह ऐसे निष्पादन के सबूत का भार विल के प्रतिपादक पर होता है । उसे यह दर्शित करना होता है कि इसे वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित किया गया है, कि वसीयतकर्ता सुसंगत समय पर व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त मानसिक दशा में था, कि वह व्ययन की प्रकृति और प्रभाव को समझती/समझता है, कि वसीयतकर्ता ने इस पर उन दो साक्षियों की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए हैं जिन्होंने उसकी उपस्थिति और अन्य प्रत्येक की उपस्थिति में इसे अनुप्रमाणित किया है । जब एक बार प्रतिपादक विल के निष्पादन के सबूत के तौर पर उपर्युक्त आवश्यक अवयवों को साबित कर देता है तो सामान्यतया वह विल को साबित करने के अपने भार से उन्मोचित हो जाता है । तथापि, यदि जहां विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होती है तो इसके प्रतिपादक को ऐसी सामग्रियों को न्यायालय में प्रस्तुत करते हुए उनका समाधान करना होता है जो ऐसे संदेह, यदि कोई हो, जो विल के निष्पादन से घिरी होती हैं, को समाप्त करने के लिए आवश्यक होते हैं । इतना ही नहीं, जहां वसीयतकर्ता द्वारा विल का सम्यक् निष्पादन किया गया हो वहां उसे विल के सबूत, जिसमें संदेहास्पद परिस्थितियों, यदि कोई हों, को निवारित करना सम्मिलित है, के लिए आवश्यक अवयवों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए । प्रतिवादी साक्षी 3 विल प्रदर्श एक्स-1 के अनुप्रमाणकों में से एक हैं और अन्य अनुप्रमाणक की मृत्यु हो गई है । उसका साक्ष्य यह दर्शित करता है कि वह एक सेवानिवृत्त उप-रजिस्ट्रार है । उसका साक्ष्य यह है कि वसीयतकर्ता ने प्रदर्श एक्स-1 पर दोनों अनुप्रमाणकों की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए थे और उसकी उपस्थिति में दस्तावेज भी अनुप्रमाणित हुआ था, उसकी प्रतिपरीक्षा में चुनौती नहीं दी गई । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने कुछ प्रश्नों का उत्तर दिया कि विल को बाल कृष्णनन् नायर द्वारा लिखा गया था, जो ऐसा नहीं था और उसने इस बारे में भी मत या राय अभिव्यक्त की

है कि वसीयतकर्ता जिसने अपने मृतक पति के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखे हुए थी, उनके पक्ष में वसीयत किए बिना पर-व्यक्तियों के पक्ष में वसीयत नहीं कर सकती थी, यह प्रतीत होता है कि इसे ही दोनों निचले न्यायालयों द्वारा विल के निष्पादन के बारे में संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई बताया गया था । जहां उसका साक्ष्य यह है कि वसीयत पर उस वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे जिसकी वसीयत करने की क्षमता को कभी भी चुनौती नहीं दी गई, दो अनुप्रमाणकों की उपस्थिति में और उसकी उपस्थिति में उन्होंने विल को प्रमाणित किया था, विल का समुचित अनुप्रमाणन और निष्पादन हुआ था । साक्षी ने वसीयतकर्ता द्वारा विल के निष्पादन को संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई दर्शित नहीं किया अथवा न ही अभिलेख पर लाया । उसका साक्ष्य सम्मिलित सम्पत्तियों के बारे में वसीयत की अन्तर्वस्तुओं पर और जिसने वसीयत लिखी, के बारे में थी, यद्यपि इसे गलत दर्शित किया गया है और उसकी यह राय भी कि वसीयतकर्ता अपने विल में अपने विधिक उत्तराधिकारियों को उत्तराधिकार से वंचित नहीं कर सकती थी, से कभी भी संदेहास्पद परिस्थितियां गठित नहीं हो सकती हैं, जब तक कि कोई अन्य दूषित कारक के साथ उसका संबंध नहीं है जिससे कि यह अभिनिर्धारित किया जा सके कि विल असली और वैध नहीं है । वसीयतकर्ता को विल की अन्तर्वस्तुओं की जानकारी होनी आवश्यक नहीं है । वह इस बारे में बिना किसी अधिक जानकारी के यह भूल कर सकता है कि विल किसने लिखी थी जिसका कोई परिणाम नहीं होता है । बाल कृष्णनन् नायर ने स्वयं को लेखक के रूप में निर्दिष्ट किया है जो विल में अन्य अनुप्रमाणक साक्षी है, जिसने दस्तावेज लिखा था । लेखक प्रतिवादी साक्षी 4 ने यह कथन किया है कि उपर्युक्त दस्तावेज को उसके मालिक ने लिखा था । प्रतिवादी साक्षी 4 ने यह प्राख्यान किया कि उसने बाल कृष्णनन् नायर के अधीन सहायक के रूप में कार्य किया था । प्रतिवादी साक्षी 4 द्वारा किए गए उपर्युक्त कथन को चुनौती नहीं दी गई । प्रतिवादी साक्षी 3 ने गलत तौर पर बाल कृष्णनन् नायर को लेखक के रूप में नाम का कथन किया जबकि यह वस्तुतः उसके सहायक प्रतिवादी साक्षी 4 के हस्तलेख में लिखा गया था, जिससे विल प्रदर्श एक्स-1 के निष्पादन को संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई नहीं कहा जा सकता है । प्रतिवादी साक्षी 3 द्वारा व्यक्त की गई राय यह थी कि लक्ष्मी अम्मा अपने विधिक उत्तराधिकारियों को उत्तराधिकार से वंचित करते हुए पर-व्यक्तियों के पक्ष में वसीयत नहीं कर सकती थी जिससे भी विल प्रदर्श एक्स-1 की असलियत के बारे में संदेह करते हुए संदेहास्पद परिस्थितियां

नहीं हो सकती हैं । मामले में अन्य साबित परिस्थितियां, अनुप्रमाणक प्रतिवादी साक्षी 3 के इस साक्ष्य की संपुष्टि करती हैं कि वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा द्वारा विल प्रदर्श एक्स-1 का सम्यक् निष्पादन किया गया था । वसीयतकर्ता द्वारा विल प्रदर्श एक्स-1 को मुहरबंद करके जिला रजिस्ट्रार के समक्ष जमा किया गया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् इसे खोला गया और रजिस्ट्रीकृत किया गया था । जहां तक विल को मुहरबंद करके जमा करने और प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए इसे खोलने और इसका रजिस्ट्रेशन करने का संबंध है, कोई चुनौती नहीं दी गई सिवाय इस दलील के कि उस लिफाफे के ऊपर रजिस्ट्रीकरण की मुहर और आद्यक्षरित नहीं थे जिस मुहरबंद लिफाफे में विल जमा की गई थी जिसमें ऐसे विल के जमा करने पर संदेहास्पद परिस्थितियां कही गई हैं । यह कहीं विहित नहीं है कि रजिस्ट्रार को उस मुहरबंद लिफाफे के ऊपर आद्यक्षरित करना चाहिए जिसमें विल जमा करने के लिए प्रस्तुत किया गया है न ही ऐसे लिफाफे के ऊपर मुहर लगाने के लिए विहित किया गया है । दोनों निचले न्यायालयों ने गलत तौर पर लिफाफे के ऊपर रजिस्ट्रार के आद्यक्षरित और मुहर के अभाव को विचार में लिया जिससे विल की असलियत के बारे में संदेह करने वाली परिस्थितियों में से एक उद्भूत हुई । इतना ही नहीं, उपर्युक्त उल्लिखित अधिनियम, 1908 की धारा 43 के अधीन यह समादेश है कि रजिस्ट्रार का यह समाधान होना चाहिए कि लिफाफे को जमा करने वाला व्यक्ति वसीयतकर्ता या उसकी/उसका अभिकर्ता है । वर्तमान मामले में, वसीयकर्ता ने स्वयं ही विल को जमा किया था । अपीलार्थियों द्वारा परीक्षित प्रतिवादी साक्षी 5 ने यह दर्शित किया है कि वह भी लक्ष्मी अम्मा के साथ मौजूद था जब उसने विल को जिला रजिस्ट्रार के समक्ष जमा किया । यद्यपि, उसका साक्ष्य विवादित था, प्रदर्श एक्स-2 पर हस्ताक्षर और अंगूठे का निशान तथा प्रदर्श पी-5 के लिफाफे पर भी जिसमें विल रखा गया था और जमा करने के लिए मुहरबंद किया गया था, जिसे लक्ष्मी अम्मा द्वारा प्रस्तुत किया गया था, को अधिक्षेपित नहीं किया गया और उसके द्वारा जमा नहीं किया गया, दर्शित किया गया है । इसलिए, अनुप्रमाणक प्रतिवादी साक्षी 3, लेखक प्रतिवादी साक्षी 4 और प्रतिवादी साक्षी 5 के द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य कि वे उस समय मौजूद थे जब वसीयतकर्ता द्वारा विल जमा किया गया था, से न केवल वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा द्वारा विल का सम्यक् निष्पादन साबित होता है अपितु उसके द्वारा विल को मुहरबंद करके रजिस्ट्रार के समक्ष उसे जमा करना भी साबित होता है । यदि वादी या प्रतिवादी सं. 1 से 10 में से कोई भी वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा के प्रदर्श

एक्स-2 में अंगूठे के निशान और हस्ताक्षर पर आक्षेप करता है तो उन्हें इसे चुनौती देने के लिए इसे सिद्ध करने हेतु कदम उठाना चाहिए था । किन्तु ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया । इसे गंभीर चुनौती के रूप में नहीं लिया गया । इस परिस्थिति का भी उल्लेख किया गया कि विल प्रदर्श एक्स-1 के विरुद्ध चुनौती नहीं दी गई कि यह असली है, इसलिए, इसमें कोई गुणागुण नहीं है । दोनों निचले न्यायालयों ने विल प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 की असलियत के बारे में एक साथ विचार किया । जहां विल प्रदर्श बी-1 को विभिन्न कारणों से साबित होना नहीं पाया गया था, जिससे अब न्यायालय का संबंध नहीं है, वहीं, बिना इस बात पर विचार किए कि क्या विल प्रदर्श एक्स-1 किसी संदेहास्पद परिस्थिति से घिरी हुई है, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि उक्त विल भी असली और वैध नहीं है । प्रतिवादी साक्षी 11 और प्रतिवादी साक्षी 12 में से किसी भी साक्षी ने साक्षी कठघरे में इसे आरोपित नहीं किया, तथापि, उन्होंने न्यायालय के समाधान हेतु संदेहास्पद परिस्थितियों को दूर करते हुए विल प्रस्तुत की जिसे विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित किया गया था, इस प्रश्न पर विचार किए बिना कि प्रतिवादी साक्षी 3, प्रतिवादी साक्षी 4 और प्रतिवादी साक्षी 5 के साक्ष्य की भिन्नता या कमियों पर आधारित ''हानिरहित परिस्थितियों'' के अलावा संदेहास्पद परिस्थितियों को दूर की जाने वाली संदेहास्पद परिस्थितियां क्या हैं, जिस पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है, वसीयतकर्ता द्वारा विल के निष्पादन में कोई कमी नहीं है । विल प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई हैं इस बारे में कथित परिस्थितियों पर दोनों निचले न्यायालयों द्वारा एक साथ विचार किया गया था और निस्संदेह विल एक्स-1 के ऊपर गलत तौर पर निष्कर्ष निकाला गया है । जहां प्रत्येक विल की असलियत के बारे में विनिर्दिष्ट निष्कर्ष निकाला जाता है वहां दोनों निचले न्यायालयों को एक विल के बारे में कुछ परिस्थितियों पर प्रथमतः विचार करना चाहिए था और उन्हें संदेहास्पद परिस्थितियां अभिनिर्धारित करते हुए ही दोनों विलों के बारे में यह निष्कर्ष निकालना चाहिए था कि विल असली नहीं है । अपील में, जिला न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से यह प्रतीत होता है कि यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि विल प्रदर्श बी-1 विभिन्न संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होने के कारण असली नहीं है, बिना इस बात पर समुचित चर्चा किए कि क्या विल प्रदर्श एक्स-1 किसी संदेहास्पद परिस्थिति से घिरी हुई है, उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थियों (डी-11 और डी-12) द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह नहीं कहा जा सकता है कि उस विल के

प्रतिपादकों द्वारा संदेहास्पद परिस्थितियों को दूर नहीं किया गया है । इसके अनुप्रमाणन के संदर्भ में, विल प्रदर्श एक्स-1 के निष्पादन के पहलुओं में से किन्हीं पर भी विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा यह परीक्षा करने के लिए विचार नहीं किया गया कि क्या अपील में प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा विस्तार से दिए गए तर्कों में उद्धृत किसी संदेहास्पद परिस्थिति से यह प्रतीत होता है कि विल एक्स-1 का निष्पादन भी संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा हुआ है । अपीलार्थियों ने विल प्रदर्श एक्स-1 को जमा करने के बारे में कोई विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है, जिसे वादी और अन्य प्रतिवादियों द्वारा भी गंभीरतापूर्वक विवादित नहीं किया गया था । प्रदर्श एक्स-2 के ऊपर जिला रजिस्ट्रार कार्यालय की मुहर या आद्यक्षर नहीं था जो एक अन्य संदेहास्पद परिस्थिति थी जिससे विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि विल प्रदर्श एक्स-1 असली नहीं है, यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा संदेह दूर करने के लिए विल के प्रतिपादक, जो साक्षी कठघरे में नहीं आए, से यह इंगित होता है कि उपर्युक्त निर्दिष्ट परिस्थितियां गुणागुण रहित हैं और वह इस बारे में कोई संदेहास्पद परिस्थिति गठित नहीं करती हैं कि विल प्रदर्श एक्स-1 असली नहीं है । अधिनियम, 1956 की धारा 15(2)(ख) के अधीन किया गया उपबंध यह सुनिश्चित करता है कि जहां एक हिन्दू नारी अपने पति या श्वसुर से कोई सम्पत्ति प्राप्त करती है यदि उसके पास कोई पुत्र, पुत्री या पूर्व-मृत पुत्र या पुत्री नहीं है तो वह सम्पत्ति उसके पति या श्वसुर के उत्तराधिकारियों, जैसी भी स्थिति हो, के पास वापस चली जाएगी, वह अपनी सम्पत्ति का वसीयती व्ययन करने से ऐसी नारी को अक्षम या निषिद्ध नहीं करता है । अपने पति या श्वसुर से समुचित तौर पर प्राप्त सम्पत्ति को भी अपनी विल के अधीन वसीयती उत्तराधिकार द्वारा व्ययन कर सकती है । यह धारा मात्र तभी लागू होती है जब संतानरहित हिन्दू नारी की निर्वसीयत मृत्यु हो जाती है और ऐसे मामलों में नहीं जहां उसके द्वारा वसीयती व्ययन किया जाता है । इस चुनौती में भी कोई गुणागुण नहीं है कि विल प्रदर्श एक्स-1 में वसीयतकर्ता ने पर-व्यक्तियों को वसीयत की थी और उनके अपने नैसर्गिक विधिक उत्तराधिकारियों, अपने पति के उत्तराधिकारियों को नहीं की थी जब कि वसीयत सम्पत्तियां अपने पति से उत्तराधिकार में प्राप्त की गई थीं । विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन चार वसीयतदारों में से एक वसीयतकर्ता के चाचा का पुत्र, एक अन्य उसके पति का भाई (द्वितीय प्रतिवादी) और शेष दो उसके पड़ोसी हैं जिनमें से एक उसकी सेवा करने वाली नौकरानी है । उसने अपनी सम्पत्तियों का व्ययन करने के लिए कुछ अन्यों के साथ अपने

पति के उत्तराधिकारियों में से मात्र एक को चुना था । इससे यह दर्शित नहीं होता है कि उसके पति के उत्तराधिकारियों को उत्तराधिकार से वंचित करना था । वर्तमान मामले में अन्यथा यह दलील देते हुए कि विल प्रदर्श एक्स-1 एक बनाया हुआ दस्तावेज है और उस दस्तावेज के अधीन नामित डी-11 और एक अन्य वसीयतदार की प्रेरणा पर अस्तित्व में लाया गया था और यह भी कि उस दस्तावेज पर किया गया हस्ताक्षर वसीयतकर्ता का नहीं है जिससे भी विल प्रदर्श एक्स-1 के निष्पादन को ऐसी संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई नहीं कही जा सकती है जैसी कि वादी या प्रतिवादी सं. 2 से 10 द्वारा मामले को सिद्ध करने के लिए संयाचना, योजना या प्रयास किया गया है । उपर्युक्त निर्दिष्ट दलीलों में से कोई भी दलील इसके समर्थन में तात्विक नहीं है न ही उनमें से किसी को सिद्ध करने के लिए कोई कदम उठाए गए हैं । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि विल प्रदर्श एक्स-1 असली नहीं है क्योंकि यदि इसका निष्पादन संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा हुआ है, यह मूल रूप से त्रुटिपूर्ण और कायम रखे जाने योग्य नहीं है और लक्ष्मी अम्मा द्वारा स्वैच्छिक रूप से अपनी स्वतंत्र इच्छा से उस वसीयत का निष्पादन किया गया है और उस समय वह व्ययन करने के लिए स्वस्थ मस्तिष्क रखती थी जिससे कोई संदेहास्पद परिस्थिति उत्पन्न नहीं होती है जैसा कि मामले में दिए गए साक्ष्यों से साबित किया गया है । अपील में, उद्भूत सारवान् प्रश्न का उत्तर अपीलार्थियों के पक्ष में दिया जाता है, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा विल प्रदर्श एक्स-1 के बारे में निकाला गया निष्कर्ष गलत है और वह विल असली और वैध है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया है कि विल प्रदर्श एक्स-1 के बारे में निकाले गए निष्कर्ष को उलटने की दशा में वादी को विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन उन अन्य वसीयतदारों को पक्षकार बनाए जाने का अवसर दिया जाना चाहिए जिन्होंने उन सम्पत्तियों के विभाजन के लिए वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया है जिसमें वादी और प्रतिवादी सं. 2 से 10 को मथु अम्मा, कृष्णनन् नायर की माता के विधिक उत्तराधिकारियों के रूप में विभाजन कराने का अधिकार है । कृष्णनन् नायर की मृत्यु पर उसकी सम्पत्तियों में 1/2 भाग का अधिकार उसकी माता में न्यागत हो गया था और 1/2 भाग लक्ष्मी अम्मा में न्यागत हो गया था । विल प्रदर्श बी-1 को संयुक्ततः कृष्णनन् नायर और लक्ष्मी अम्मा द्वारा निष्पादित किया गया था जिसे असली नहीं पाया गया है । लक्ष्मी अम्मा का विल प्रदर्श एक्स-1 और उस विल के अधीन उसके द्वारा की गई वसीयत मात्र उस सम्पत्ति के आधे

हिस्से में ही लागू होगी जो उसने अपने पति से उत्तराधिकार में प्राप्त किया था । विचारण न्यायालय ने इसको पक्षकार के असंयोजन के विवाद्यक का उत्तर वादी के पक्ष में दिया है । उस परिप्रेक्ष्य में यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि मथु अम्मा, स्व. कृष्णनन् नायर की माता के विधिक उत्तराधिकारियों के रूप में वादी और प्रतिवादी सं. 2 से 10 ने उन सम्पत्तियों के ऊपर उसके अधिकार को उत्तराधिकार में प्राप्त किया है जिसे उसने कृष्णनन् नायर की मृत्यु होने पर लक्ष्मी अम्मा के साथ अर्जित किया था । अब, विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन डी-11 और डी-12 के अलावा दो अन्यों ने भी लक्ष्मी अम्मा की सम्पत्तियों में हिस्सा प्राप्त किया है । वाद में पक्षकारों के रूप में उन्हें पक्षकार बनाया जाना वाद में सम्पत्तियों के विभाजन के लिए आवश्यक है । न्यायालय का निष्कर्ष यह है कि वादी को न्यायालय के समक्ष ऐसा पक्षकार बनाए जाने के लिए समुचित आवेदन फाइल करने के लिए हेतु वाद में अतिरिक्त प्रतिवादियों के रूप में उन्हें पक्षकार बनाने हेतु समुचित अवसर उपलब्ध कराया जाना चाहिए । (पैरा 11, 12, 13, 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	2011 (3) के. एस. सी. 288 : **अजय पी. आशेर** बनाम **किरीट पी. आशेर और एक अन्य** ;	10
[2010]	(2010) 5 एस. सी. सी. 274 : **एस. आर. श्रीनिवास और अन्य** बनाम **वी. एस. पदवथम्मा** ;	10,14
[2009]	(2009) 1 एस. सी. सी. 354 : **के. लक्ष्मणन्** बनाम **थेक्याइल पद्मिनी और अन्य** ;	10
[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 300 : **सावित्री और अन्य** बनाम **कत्यायनी अम्मा और अन्य** ;	9
[2007]	2007 एस. ए. आर. (सिविल) 553 : **अदिवेक्का और अन्य** बनाम **हनमव्वा काम वेंकटेश** ;	10
[1998]	1998 एस. ए. आर. (सिविल) 401 : **गुरदयाल कौर और अन्य** बनाम **करतार कौर** ;	10

[1959] ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 443 :
एच. वेंकटचला आयंगर बनाम **बी. एन. थिम्माजम्मा और अन्य** । 9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की नियमित द्वितीय अपील सं. 223.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री के. वी. सोहन, विनीत कुरियाकोसे और श्रीमती श्रीजा सोहन के.

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री वी. कृष्णनन् और आर. पार्थसारथी

न्यायमूर्ति एस. एस. सतीशचन्द्रन – विभाजन के लिए वाद में अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 11 और 12 अपीलार्थी हैं । प्रत्यर्थी, वाद में वादी और प्रतिवादी सं. 2 से 10 हैं ।

2. प्रथम प्रत्यर्थी/वादी, स्वर्गीय कृष्णनन् नायर, जो उसकी माता अर्थात् मथु अम्मा से पूर्व-मृत है, का भाई है । विभाजन के लिए वाद में सम्पत्तियों के 9 मद सम्मिलित हैं । मद सं. 1 पर कृष्णनन् नायर, उसकी माता, वादी और एक अन्य भाई (रमन नायर), ने एक साथ समनुदेशन द्वारा अधिकार प्राप्त किया था और उसके बाद भाइयों में से एक रमन नायर ने अपने अधिकार को कृष्णनन् नायर के पक्ष में अवमुक्त कर दिया था । कृष्णनन् नायर ने लक्ष्मी अम्मा के साथ विवाह किया और उसकी संतानरहित मृत्यु होने पर मद सं. 1 में उसके अधिकार बराबर हिस्सों में उसकी माता और लक्ष्मी अम्मा में न्यागत हो गए थे । शेष मद सं. 2 से 9, जो सभी कृष्णनन् नायर से संबंधित थे, उसकी विधवा और उसकी माता में उत्तराधिकार द्वारा बराबर हिस्सों में न्यागत हो गए । मथु अम्मा, माता के कृष्णनन् नायर की सम्पत्तियों में 1/2 अधिकार उसकी मृत्यु होने पर, उत्तराधिकार द्वारा उसके विधिक उत्तराधिकारियों और उसके बच्चों वादियों और प्रतिवादी सं. 2 से 4 और एक अन्य पुत्र रमन नायर, जिसकी अपनी माता से पूर्व मृत्यु हो गई थी, के बच्चों और वाद के प्रतिवादी सं. 5 से 7 में न्यागत हो गए । प्रथम प्रतिवादी का वाद लम्बित रहा और उसके विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिवादी सं. 8 से 10 के रूप में अभिवाचित किया

गया । वादी ने मद सं. 1 जिसमें 1/4 हिस्से का अधिकार सम्मिलित था, पर दावा किया जो जिसे उसने उस सम्पत्ति में अर्जित किया था और विभाजन तथा पृथक् कब्जे के लिए वादपत्र विनिर्दिष्ट हिस्से और मात्रा के अनुसार अन्य मदों में भी हिस्से का दावा किया । द्वितीय प्रतिवादी एकपक्षीय बना रहा । प्रतिवादी सं. 1 और 3 से 7 ने अपने हिस्सों के विभाजन की ईप्सा करते हुए वादपत्र का समर्थन करते हुए संयुक्त लिखित कथन फाइल किया किन्तु उन्होंने यह दलील दी कि वे उस वादी और द्वितीय प्रतिवादी से अन्तःकालीन लाभ पाने के हकदार हैं, जिन्होंने समुचित आय होने का कथन किया है । उन्होंने सम्पत्ति का विभाजन होने पर अपने हिस्से के निबंधनों में पृथक् आबंटन के लिए न्यायालय शुल्क का भी संदाय किया है । प्रतिवादी सं. 8 से 10, जो प्रथम प्रतिवादी के विधिक उत्तराधिकारियों के रूप में प्रतिस्थापित किए गए थे, ने अन्य प्रतिवादियों (डी-1, डी-3 से डी-7) की दलीलों का समर्थन करते हुए एक संयुक्त लिखित कथन फाइल किया ।

3. अपीलार्थियों, तृतीय पक्षकारों ने वाद में अतिरिक्त प्रतिवादियों के रूप में स्वयं को पक्षकार बनाए जाने के लिए आवेदन किया यह दलील देते हुए कि स्वर्गीय लक्ष्मी अम्मा ने उनके और दो अन्यों के पक्ष में अपनी सभी सम्पत्तियों का वसीयत करते हुए एक विल निष्पादित की थी । वे वाद में अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 11 और 12 के रूप में पक्षकार बनाए गए थे । उन्होंने यह दलील देते हुए वाद का विरोध किया कि कृष्णनन् नायर और लक्ष्मी अम्मा ने उस वसीयत में निर्दिष्ट एक भवन के सिवाय स्वयं से संबंधित सभी सम्पत्तियों के बारे में एक संयुक्त और पारस्परिक विल प्रदर्श बी-1 निष्पादित की थी । ऐसे विल के निबंधनों में कृष्णनन् नायर की मृत्यु होने के पश्चात् जीवित लक्ष्मी अम्मा कृष्णनन् नायर से संबंधित सभी सम्पत्तियों की अनन्य स्वामी हो गई थी । कृष्णनन् नायर की मृत्यु होने और विल प्रदर्श बी-1 प्रभाव में आने के पश्चात् वाद सम्पत्ति में उसके सभी अधिकार लक्ष्मी अम्मा में न्यागत हो गए । उसके बाद, लक्ष्मी अम्मा ने इन प्रतिवादियों और दो अन्यों के पक्ष में भी अपनी सम्पत्तियों का वसीयत करते हुए एक विल प्रदर्श एक्स-1 निष्पादित किया और उक्त विल को मुहरबंद करते हुए आगे की कार्यवाही के लिए जिला रजिस्ट्रार के समक्ष जमा कर दिया था । उसकी मृत्यु के पश्चात् मुहरबंद लिफाफा खोला गया और उसकी वसीयत विल प्रदर्श एक्स-1 रजिस्ट्रीकृत किया गया था । उसकी सभी सम्पत्तियों का वसीयतदारों, इन प्रतिवादियों और दो अन्यों के पक्ष में

विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन वसीयत किया गया था । मात्र 1/4 हिस्से के संबंध में, जो मथु अम्मा का मद सं. 1 सम्पत्ति में था, उसके लिए ही उसके उत्तराधिकारी वादी और अन्य प्रतिवादी विभाजन के लिए ईप्सा कर सके हैं और एकमात्र उस मद के विभाजन पर ही पक्षकार, जिनमें ये प्रतिवादी सम्मिलित हैं, हिस्से प्राप्त कर सकते हैं, उन्हें कोई आपत्ति नहीं है । अन्य मदों के संबंध में उनमें से किसी वादी और अन्य प्रतिवादियों का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि वे पूर्णरूपेण लक्ष्मी अम्मा से संबंधित हैं और उसने इसका व्ययन कर दिया था । इन प्रतिवादियों का पक्षकथन यह है कि सम्पत्तियां विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन है । चूंकि, विल प्रदर्श एक्स-1 में अन्य दो वसीयतदारों को वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया है, इसलिए, इन प्रतिवादियों ने यह दलील दी कि वाद आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण दूषित है ।

4. वाद का अतिरिक्त प्रतिवादियों द्वारा विभिन्न आधारों पर विल प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 की उसके निष्पादकों द्वारा उसके निष्पादन, असलियत और वैधता को आक्षेपित करते हुए विरोध किया गया जैसा कि उपर्युक्त वादपत्र संशोधित था । वादी ने यह अभिकथित किया कि दोनों विल कूटरचित और गढ़े हुए थे और नामित वसीयतकर्ताओं द्वारा निष्पादित नहीं थे । प्रतिवादियों द्वारा संशोधित वादपत्र में अतिरिक्त लिखित कथन फाइल किया गया जिसमें उन्होंने वाद सम्पत्तियों के बारे में डी-11 और डी-12 द्वारा किए गए दावे/अधिकार को आक्षेपित करते हुए विलों की असलियत को विवादित किया था ।

5. यद्यपि संविवाद के बारे में पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर कतिपय विवाद्यक न्यायनिर्णयन के लिए विरचित किए गए थे किन्तु उनमें से मुख्यतः प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 की असलियत पर केन्द्रित किया गया जिसे वाद का विरोध करते हुए अपीलार्थियों (डी-11 और डी-12) द्वारा स्थापित किया गया था । विवाद्यक का विचारण करने के लिए विरचित विवाद्यक सं. 3, 4 निम्नलिखित हैं :–

(3) क्या तारीख 10 जनवरी, 1988 का विल असली है ?

(4) क्या लक्ष्मी अम्मा ने तारीख 22 जनवरी, 1995 को एक विल निष्पादित किया था ?

वादी की ओर से, उसकी परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में हुई थी और प्रदर्श ए-1 से ए-17 चिन्हित किए गए थे और अपीलार्थियों की ओर से प्रतिवादी

साक्षी 1 से प्रतिवादी साक्षी 5 की परीक्षा की गई थी और प्रदर्श बी-1 से बी-7 चिन्हित किए गए थे । दस्तावेजों को समन किया गया और प्रस्तुत दस्तावेज, प्रदर्श एक्स-1 से एक्स-6 चिन्हित किए गए । विद्वान् उप-न्यायाधीश ने सामग्रियों का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दोनों विल अपने निष्पादन और असलियत के बारे में कतिपय संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरे हुए हैं और इन परिस्थितियों के बारे में इनके प्रतिपादकों, अपीलार्थियों द्वारा कोई संतोषप्रद समाधान या स्पष्टीकरण नहीं किया गया है और मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त विवाद्यक अपीलार्थियों के विरुद्ध पाते हुए यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि विल प्रदर्श बी-1 और एक्स-1 असली नहीं हैं । दोनों विल, असली नहीं पाए गए, अतिरिक्त प्रतिवादियों सं. 11 और 12 की दलीलों का खंडन करते हुए वादी और अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में उनके द्वारा विनिर्दिष्ट हिस्सों के अनुसार, जिसके ऊपर उन्होंने कोई विवाद या संविवाद नहीं किया है, पारित किया जाता है, यह निर्देश देते हुए कि वे अंतिम डिक्री पारित करने के लिए आवेदन फाइल करे ।

6. विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर प्रारम्भिक डिक्री को चुनौती देते हुए अपीलार्थियों द्वारा प्रस्तुत अपील में, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा अभिवचनों और साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने के पश्चात् खारिज कर दिया गया और इस निष्कर्ष से सहमति जताई की विल प्रदर्श बी-1 और एक्स-1 असली नहीं हैं यह दोहराते हुए कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा इंगित दोनों विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई हैं । वादी और अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में पारित प्रारम्भिक डिक्री को निचले अपील न्यायालय द्वारा अतिरिक्त प्रतिवादियों सं. 11 और 12 की अपील को खारिज करते हुए बिना कोई उपांतरण के पुष्टि कर दी गई । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा वादी और अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में मंजूर प्रारम्भिक डिक्री में पारित समवर्ती विनिश्चय के अनुसार ऐसी डिक्री के अधीन विनिर्दिष्ट हिस्सों के अनुसरण में वाद सम्पत्तियों के विभाजन का निर्देश देते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि विल प्रदर्श बी-1 और एक्स-1 असली नहीं है और यह विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होने के कारण दूषित हैं, अतएव, यह द्वितीय अपील फाइल की गई ।

7. विधि का सारवान् प्रश्न जिस पर अपील में सुनवाई के लिए प्रत्यर्थियों को नोटिस जारी किया गया था, इस प्रकार है :–

"क्या निचले न्यायालयों का यह निष्कर्ष कि विल प्रदर्श एक्स-1

का निष्पादन संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है और इसके प्रतिपादकों द्वारा संदेहास्पद परिस्थितियों का स्पष्टीकरण साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, कायम रखे जाने योग्य नहीं है, और विल प्रदर्श एक्स-1 उप-रजिस्ट्रार (तत्कालीन जिला रजिस्ट्रार) के समक्ष जमा किया गया था और उप-रजिस्ट्रार द्वारा समन किए जाने पर न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था ।"

8. वाद में वादी और प्रतिवादियों के पक्ष में पारित प्रारम्भिक डिक्री के गुणागुणों की परीक्षा में विचार के लिए एकमात्र उद्भूत प्रश्न विल प्रदर्श एक्स-1 की वैधता पर दोनों निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की सत्यता है । वाद का विरोध करते हुए अपीलार्थियों द्वारा कई दलीलें दी गईं और विल प्रदर्श बी-1 के आधार पर वाद सम्पत्तियों की निष्पक्षता के ऊपर जो दोनों निचले न्यायालयों द्वारा समवर्ती रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि साबित नहीं है अथवा असली और वैध नहीं है, अंतिम हो गया है और अधिक्षेपनीय नहीं है । जहां अपीलार्थियों द्वारा अवलंबित विल प्रदर्श बी-1 अस्वीकार्य पाया गया था, अविवादित रूप से कृष्णनन् नायर की मृत्यु पर उसकी शेष संपदा उसकी विधवा लक्ष्मी अम्मा और उसकी माता तथा चतुर्थ प्रतिवादी में समान रूप से न्यागत हो गई थी । चतुर्थ प्रतिवादी की लक्ष्मी अम्मा के पूर्व-मृत्यु हो गई थी । लक्ष्मी अम्मा की मृत्यु निर्वसीयत हो गई थी और स्वर्गीय कृष्णनन् नायर की संपदा से उसके द्वारा प्राप्त अनुसूचित सम्पत्तियां वादी और प्रतिवादी सं. 1 से 10 तक से पूर्णरूपेण संबंधित थीं जो स्वर्गीय कृष्णनन् नायर के उत्तराधिकारी हैं, विभाजन के लिए उनका पक्षकथन है । अपने पति की संपदा के ऊपर लक्ष्मी अम्मा के जो भी अधिकार हैं, चूंकि उसकी कोई संतान नहीं थी, इसलिए हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 15 की उपधारा 2(ख) को ध्यान में रखते हुए, उसकी मृत्यु होने पर उसके पति के उत्तराधिकारियों को विभाजन के लिए उनके दावों के आधार पर न्यागत हो जाएगी । लक्ष्मी अम्मा ने 4 व्यक्तियों, जिनमें अपीलार्थी सम्मिलित हैं, के पक्ष में अपनी सभी सम्पत्तियों की वसीयत करते हुए विल प्रदर्श एक्स-1 निष्पादित किया था और उसकी मृत्यु होने पर वसीयती उत्तराधिकार द्वारा उसकी सम्पत्तियां वसीयतदारों में न्यागत हो गई, विभाजन के लिए वाद का विरोध करते हुए अपीलार्थियों का यही पक्षकथन है । दोनों निचले न्यायालयों ने उस विल को कुछ संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरे होने के कारण विल प्रदर्श एक्स 1 की सत्यता के बारे में उद्भूत चुनौती को स्वीकार कर लिया था । दोनों

निचले न्यायालयों ने समवर्ती रूप से यह निष्कर्ष निकाला था कि विल प्रदर्श एक्स-1 असली और वैध नहीं है । क्या वह विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरे होने के संदर्भ में परीक्षा किए जाने के लिए स्वीकार्य है जैसा कि संयाचना की गई है और क्या दोनों निचले न्यायालयों द्वारा किया गया यह अभिनिर्धारण कि विल प्रदर्श एक्स-1 वैध नहीं है, अपील योग्य है ।

9. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री के. वी. सोहन ने यह तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा यह निष्कर्ष निकालना कि विल प्रदर्श एक्स-1 संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है, यह संदेहास्पद परिस्थितियां इस विल की असलियत और वैधता में हस्तक्षेप या आक्षेप करने के लिए पर्याप्त नहीं है । वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा ने अपीलार्थियों और दो अन्यों के पक्ष में वसीयत करते हुए अपने प्राकृतिक उत्तराधिकारियों को अपवर्जित कर दिया था जिसे ध्यान में रखते हुए ही विल प्रदर्श एक्स-1 की असलियत के बारे में संदेहास्पद परिस्थितियों के प्रति संदेह व्यक्त किया गया है जिसे विद्वान् काउंसेल ने **सावित्री और अन्य** बनाम **कत्यायनी अम्मा और अन्य**[1] का अवलंब लेते हुए बिना किसी आधार या गुणागुण के निवेदन किया है । विद्वान् काउंसेल ने **एच. वेंकटचला आयंगर** बनाम **बी. एन. थिम्माजम्मा और अन्य**[2] वाले मामले का भी अवलंब लिया यह इंगित करने के लिए कि विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई होने पर क्या मत हो सकता है और ऐसी संदेहास्पद परिस्थितियों का समाधान करने के लिए प्रतिपादकों पर सबूत का भार होता है, यदि कोई है, तो उसे स्पष्ट और समाधानप्रद साक्ष्य द्वारा समाधान करना चाहिए । विद्वान् काउंसेल के अनुसार दोनों निचले न्यायालयों द्वारा दोनों विलों प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 की वैधता और असलियत के बारे में अभिकथित संदेहास्पद परिस्थितियों पर त्रुटिपूर्वक विचार किया है और पृथक्तः यह निष्कर्ष नहीं निकाला है कि किन संदेहास्पद परिस्थितियों, यदि कोई हों, से दोनों विल घिरे हुए हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि विल प्रदर्श बी-1 एक संयुक्त और पारस्परिक विल है जिसे कृष्णनन् नायर और लक्ष्मी अम्मा द्वारा निष्पादित किया गया है और विल प्रदर्श एक्स-1 को लक्ष्मी अम्मा ने कृष्णनन् नायर की मृत्यु के पश्चात् निष्पादित किया था और इतना ही नहीं यदि कोई संदेहास्पद परिस्थितियां हैं जिससे दोनों विल घिरी हुई हैं तो इन दोनों विलों की वैधता और असलियत के बारे में पृथक्तः विचार किया

---

[1] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 300.

[2] ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 443.

जाना अपेक्षित था किन्तु दोनों निचले न्यायालयों द्वारा ऐसा नहीं किया गया । विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि विल प्रदर्श एक्स-1 किसी भी प्रकार की संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई नहीं है और दोनों निचले न्यायालयों ने कतिपय परिस्थितियों का गलत तौर से अवलंब लिया जिन्हें किसी भी प्रकार से संदेहास्पद परिस्थिति के बारे में विचार नहीं किया जा सकता है जिससे कि उन्होंने विल की असलियत के बारे में संदेह व्यक्त करते हुए यह त्रुटिपूर्वक अभिनिर्धारित किया कि उपर्युक्त विल असली और वैध नहीं है । लक्ष्मी अम्मा द्वारा स्वेच्छया अपनी स्वतंत्र इच्छा से विल प्रदर्श एक्स-1 निष्पादित की थी और उसकी स्वतंत्र इच्छा को उन अनुप्रमाणक साक्षियों में से एक प्रतिवादी साक्षी 3 के साक्ष्य द्वारा साबित भी किया गया है जो एकमात्र जीवित है और उसके लेखकों में से भी एक है । प्रतिवादी साक्षी 4 की भी मामले में परीक्षा की गई । विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि यदि प्रदर्श एक्स-1 के विरुद्ध चुनौती असफल हो जाती है तो भी वाद में पक्षकारों के रूप में विल के अधीन नामित अन्य दो वसीयतदारों को पक्षकार नहीं बनाए जाने से भी आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन के कारण वाद दूषित नहीं हो जाता है ।

10. प्रतिवादी सं. 1 से 10 के विद्वान् काउंसेल श्री वी. कृष्णनन् ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित समवर्ती डिक्री को चुनौती दिए जाने का विरोध करते हुए यह दलील दी कि मामले के दिए गए तथ्यों में ही विल प्रदर्श एक्स-1 की असलियत और वैधता का परीक्षण किया जाना चाहिए न कि उस विल को संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होने के मात्र संदर्भ में अपितु विल प्रदर्श बी-1 के संदर्भ में भी, जिसे पहले ही वैध और असली नहीं पाया गया है ओर संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होने के कारण दूषित पाया गया है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, जहां विल प्रदर्श बी-1 को कृष्णनन् नायर और लक्ष्मी अम्मा द्वारा संयुक्ततः निष्पादित किया जाना अभिकथित है, और इसे विल प्रदर्श एक्स-1 के प्रति निर्दिष्ट और प्रत्याख्यापित किया गया है, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा विल प्रदर्श एक्स-1 के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि विल प्रदर्श बी-1 असली और वैध नहीं है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, दोनों निचले न्यायालयों द्वारा यह उल्लिखित कि विल प्रदर्श एक्स-1 संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है, को हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 15(2)(ख) में समाविष्ट कानूनी उपबंधों के संदर्भ में देखा और परीक्षा किया जाना चाहिए । पूर्वोक्त उपबंध का यह समादेश है कि उत्तराधिकार, एक हिन्दू

नारी को अन्यथा प्रयोज्य उस सम्पत्ति में उपलब्ध नहीं होगा जो उसने अपने पति या ससुर से मृतक के पुत्र या पुत्री के अभाव में, जिसमें पूर्व-मृत पुत्र या पुत्री के बच्चे सम्मिलित हैं, उत्तराधिकार में प्राप्त की है । एक हिन्दू नारी द्वारा अपने पति या ससुर से प्राप्त संपत्ति उसके पति के उत्तराधिकारियों में न्यागत होगी न कि अधिनियम, 1956 की धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन उत्तराधिकार के सामान्य नियम के अनुसार न्यागत होगी, विद्वान् काउंसेल द्वारा यह संयाचना करते हुए दलील दी गई कि विल प्रदर्श एक्स-1, अधिनियम, 1956 की धारा 15(2)(ख) के विपरीत व्ययन करता है इसलिए, स्वयमेव ही संदेहास्पद परिस्थितियों के कारण उस विल को दूषित करता है । विद्वान् काउंसेल ने **एस. आर. श्रीनिवास और अन्य** बनाम **वी. एस. पदवथम्मा**[1] वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि अधिनियम, 1956 की धारा 15(2)(ख) एक अपवाद सुनिश्चित करता है कि एक संतानरहित निर्वसीयत मृत हिन्दू नारी की उत्तराधिकार में प्राप्त संपत्ति उसी स्रोत में वापस चली जाती है जिससे कि इस प्रकार उत्तराधिकार में प्राप्त संपत्ति पर-व्यक्ति के हाथों में न चली जाए । संदेहास्पद परिस्थितियों, जिस पर विचार करते हुए दोनों निचले न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि विल प्रदर्श एक्स-1 असली और वैध नहीं है, को इंगित करते हुए और **अदिवेक्का और अन्य** बनाम **हनमव्वा काम वेंकटेश**[2], **गुरदयाल कौर और अन्य** बनाम **करतार कौर**[3], **के. लक्ष्मणन्** बनाम **थेक्याइल पद्मिनी और अन्य**[4] तथा **अजय पी. आशेर** बनाम **किरीट पी. आशेर और एक अन्य**[5] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रतिपादक द्वारा विल प्रदर्श एक्स-1 की असलियत और वैधता को स्वीकार करते हुए वसीयत करते समय इसकी संदेहास्पद परिस्थितियों को दूर नहीं किया गया है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा यह समवर्ती निष्कर्ष की विल प्रदर्श एक्स-1 संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होने के कारण असली और वैध नहीं है, अनाक्षेपनीय है और इसके विरुद्ध फाइल अपील खारिज ही किए जाने योग्य है ।

---

[1] (2010) 5 एस. सी. सी. 274.
[2] 2007 एस. ए. आर. (सिविल) 553.
[3] 1998 एस. ए. आर. (सिविल) 401.
[4] (2009) 1 एस. सी. सी. 354.
[5] 2011 (3) के. एच. सी. 288.

11. इस प्रश्न पर विचार करने के पूर्व कि क्या दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए यह निष्कर्ष कि विल प्रदर्श एक्स-1 कतिपय संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है और इस प्रकार यह विल असली और वैध नहीं है, यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस बात की कोई चुनौती नहीं दी गई है कि वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा अपनी सम्पत्तियों का व्ययन करने के लिए वसीयत करते समय स्वस्थचित्त मानसिक दशा और वसीयत करने के लिए पूर्णतया सक्षम थी । यद्यपि वादी ने विल प्रदर्श एक्स-1 में नामित वसीयतदारों में से दो को अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 11 और 12 के रूप में अपीलार्थियों को पक्षकार बनाए जाने के पश्चात् वादपत्र में संशोधन किया था, यह अभिकथन करते हुए कि दोनों विल प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 गढ़े गए थे और विल प्रदर्श एक्स-1 न तो लक्ष्मी अम्मा द्वारा निष्पादित किया गया था और न ही उसके द्वारा जमा किया गया था और यह विल वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा किए गए कपट के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया था, इन चुनौतियों पर न तो जोर दिया गया न ही विल प्रदर्श एक्स-1 की असलियत को चुनौती देते हुए उसके बारे में कोई सामग्री प्रस्तुत की गई थी, मात्र इसी प्रश्न से हमारा संबंध है । जहां प्रथमतः कार्यवाही में एक विल चुनौतीधीन होती है और प्रमुख प्रश्न यह उठता है कि क्या यह वसीयतकर्ता की स्वतंत्र इच्छा और स्वेच्छा से विल सम्यक् रूप से निष्पादित की गई है । निःसंदेह ऐसे निष्पादन के सबूत का भार विल के प्रतिपादक पर होता है । उसे यह दर्शित करना होता है कि इसे वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित किया गया है, कि वसीयतकर्ता सुसंगत समय पर व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त मानसिक दशा में था, कि वह व्ययन की प्रकृति और प्रभाव को समझती/समझता है, कि वसीयतकर्ता ने इस पर उन दो साक्षियों की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए हैं जिन्होंने उसकी उपस्थिति और अन्य प्रत्येक की उपस्थिति में इसे अनुप्रमाणित किया है । जब एक बार प्रतिपादक विल के निष्पादन के सबूत के तौर पर उपर्युक्त आवश्यक अवयवों को साबित कर देता है तो सामान्यतया वह विल को साबित करने के अपने भार से उन्मोचित हो जाता है । तथापि, यदि जहां विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होती है तो इसके प्रतिपादक को ऐसी सामग्रियों को न्यायालय में प्रस्तुत करते हुए उनका समाधान करना होता है जो ऐसे संदेह, यदि कोई हो, जो विल के निष्पादन से घिरी होती हैं, को समाप्त करने के लिए आवश्यक होते हैं । इतना ही नहीं, जहां वसीयतकर्ता द्वारा विल का सम्यक् निष्पादन किया गया हो वहां उसे विल के सबूत, जिसमें संदेहास्पद परिस्थितियों, यदि कोई हों, को निवारित करना सम्मिलित

है, के लिए आवश्यक अवयवों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए ।

12. प्रतिवादी साक्षी 3 विल प्रदर्श एक्स-1 के अनुप्रमाणकों में से एक है और अन्य अनुप्रमाणक की मृत्यु हो गई है । उसका साक्ष्य यह दर्शित करता है कि वह एक सेवानिवृत्त उप-रजिस्ट्रार है । उसका साक्ष्य यह है कि वसीयतकर्ता ने प्रदर्श एक्स-1 पर दोनों अनुप्रमाणकों की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए थे और उसकी उपस्थिति में दस्तावेज भी अनुप्रमाणित हुआ था, उसकी प्रतिपरीक्षा में चुनौती नहीं दी गई । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने कुछ प्रश्नों का उत्तर दिया कि विल को बाल कृष्णनन् नायर द्वारा लिखा गया था, जो ऐसा नहीं था और उसने इस बारे में भी मत या राय अभिव्यक्त की है कि वसीयतकर्ता जिसने अपने मृतक पति के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखे हुए थी, उनके पक्ष में वसीयत किए बिना पर-व्यक्तियों के पक्ष में वसीयत नहीं कर सकती थी, यह प्रतीत होता है कि इसे ही दोनों निचले न्यायालयों द्वारा विल के निष्पादन के बारे में संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई बताया गया था । जहां उसका साक्ष्य यह है कि वसीयत पर उस वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे जिसकी वसीयत करने की क्षमता को कभी भी चुनौती नहीं दी गई, दो अनुप्रमाणकों की उपस्थिति में और उसकी उपस्थिति में उन्होंने विल को प्रमाणित किया था, विल का समुचित अनुप्रमाणन और निष्पादन हुआ था । साक्षी ने वसीयतकर्ता द्वारा विल के निष्पादन को संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई दर्शित नहीं किया अथवा न ही अभिलेख पर लाया । उसका साक्ष्य सम्मिलित सम्पत्तियों के बारे में वसीयत की अन्तर्वस्तुओं पर और जिसने वसीयत लिखी, के बारे में थी, यद्यपि इसे गलत दर्शित किया गया है और उसकी यह राय भी कि वसीयतकर्ता अपने विल में अपने विधिक उत्तराधिकारियों को उत्तराधिकार से वंचित नहीं कर सकती थी, से कभी भी संदेहास्पद परिस्थितियां गठित नहीं कर सकती हैं, जब तक कि कोई अन्य दूषित कारक के साथ उसका संबंध नहीं है जिससे कि यह अभिनिर्धारित किया जा सके कि विल असली और वैध नहीं है । वसीयतकर्ता को विल की अन्तर्वस्तुओं की जानकारी होनी आवश्यक नहीं है । वह इस बारे में बिना किसी अधिक जानकारी के यह भूल कर सकता है कि विल किसने लिखी थी जिसका कोई परिणाम नहीं होता है । बाल कृष्णनन् नायर ने स्वयं को लेखक के रूप में निर्दिष्ट किया है जो विल में अन्य अनुप्रमाणक साक्षी है, जिसने दस्तावेज लिखा था । लेखक प्रतिवादी साक्षी 4 ने यह कथन किया है कि उपर्युक्त दस्तावेज को उसके मालिक ने लिखा था ।

प्रतिवादी साक्षी 4 ने यह प्राख्यान किया कि वह बाल कृष्णनन् नायर के अधीन सहायक के रूप में कार्य किया था । प्रतिवादी साक्षी 4 द्वारा किए गए उपर्युक्त कथन को चुनौती नहीं दी गई । प्रतिवादी साक्षी 3 ने गलत तौर पर बाल कृष्णनन् को लेखक के रूप में नाम का कथन किया जबकि यह वस्तुतः उसके सहायक प्रतिवादी साक्षी 4 के हस्तलेख में लिखा गया था, जिससे विल प्रदर्श एक्स-1 के निष्पादन को संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई नहीं कहा जा सकता है । प्रतिवादी साक्षी 3 द्वारा व्यक्त की गई राय यह थी कि लक्ष्मी अम्मा अपने विधिक उत्तराधिकारियों को उत्तराधिकार से वंचित करते हुए पर-व्यक्तियों के पक्ष में वसीयत नहीं कर सकती थी जिससे भी विल प्रदर्श एक्स-1 की असलियत के बारे में संदेह करते हुए संदेहास्पद परिस्थितियां नहीं हो सकती हैं । मामले में अन्य साबित परिस्थितियां, अनुप्रमाणक प्रतिवादी साक्षी 3 के इस साक्ष्य की संपुष्टि करती हैं कि वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा द्वारा विल प्रदर्श एक्स-1 का सम्यक् निष्पादन किया गया था । वसीयतकर्ता द्वारा विल प्रदर्श एक्स-1 को मुहरबंद करके जिला रजिस्ट्रार के समक्ष जमा किया गया था और उसकी मृत्यु के पश्चात् इसे खोला गया और रजिस्ट्रीकृत किया गया था । जहां तक विल को मुहरबंद करके जमा करने और प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए इसे खोलने और इसका रजिस्ट्रेशन करने का संबंध है, कोई चुनौती नहीं दी गई सिवाय इस दलील के कि उस लिफाफे के ऊपर रजिस्ट्रीकरण की मुहर और आद्यक्षरित नहीं थे जिस मुहरबंद लिफाफे में विल जमा की गई थी जिसमें ऐसे विल के जमा करने पर संदेहास्पद परिस्थितियां कही गई हैं । विलों को जमा करने के लिए शासित करने वाली प्रक्रिया, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 42 से 46 के अधीन विहित है । अधिनियम, 1908 की धारा 43 में विलों को जमा करने के लिए अनुसरण की जानी वाली प्रक्रिया विहित है । यह इस प्रकार है :–

> "43. **विलों के निक्षेप पर प्रक्रिया** – (1) ऐसा लिफाफा प्राप्त होने पर यदि रजिस्ट्रार का समाधान हो जाता है कि निक्षेप के लिए उसे उपस्थापित करने वाला व्यक्ति वसीयतकर्ता या उसका अभिकर्ता है तो वह संख्यांक 5 वाली अपनी रजिस्ट्रीकरण पुस्तक में पूर्वोक्त उपरिलेखन को चढ़ा लेगा और पुस्तक में और उक्त लिफाफे पर उसे ऐसे उपस्थापित करने और प्राप्ति के वर्ष, मास, दिन और समय को और ऐसे व्यक्तियों के नामों को, जो वसीयतकर्ता या उसके अभिकर्ता की अनन्यता को प्रमाणित करे, और ऐसी किसी मुद्रा पर के, जो

लिफाफे पर लगी हो, किसी सुपाठ्य अन्तरालेखन का टिप्पण कर लेगा ।"

यह कहीं विहित नहीं है कि रजिस्ट्रार को उस मुहरबंद लिफाफे के ऊपर आद्यक्षरित करना चाहिए जिसमें विल जमा करने के लिए प्रस्तुत किया गया है न ही ऐसे लिफाफे के ऊपर मुहर लगाने के लिए विहित किया गया है । दोनों निचले न्यायालयों ने गलत तौर पर लिफाफे के ऊपर रजिस्ट्रार के आद्यक्षरित और मुहर के अभाव को विचार में लिया जिससे विल की असलियत के बारे में संदेह करने वाली परिस्थितियों में से एक उद्भूत हुई । इतना ही नहीं, उपर्युक्त उल्लिखित अधिनियम, 1908 की धारा 43 के अधीन यह समादेश है कि रजिस्ट्रार का यह समाधान होना चाहिए कि लिफाफे को जमा करने वाला व्यक्ति वसीयतकर्ता या उसकी/उसका अभिकर्ता है । वर्तमान मामले में, वसीयतकर्ता ने स्वयं ही विल को जमा किया था । अपीलार्थियों द्वारा परीक्षित प्रतिवादी साक्षी 5 यह दर्शित किया है कि वह भी लक्ष्मी अम्मा के साथ मौजूद था जब उसने विल को जिला रजिस्ट्रार के समक्ष जमा किया । यद्यपि, उसका साक्ष्य विवादित था, प्रदर्श एक्स-2 पर हस्ताक्षर और अंगूठे का निशान तथा प्रदर्श पी-5 के लिफाफे पर भी जिसमें विल रखा गया था और जमा करने के लिए मुहरबंद किया गया था, जिसे लक्ष्मी अम्मा द्वारा प्रस्तुत किया गया था, को अधिक्षेपित नहीं किया गया और उसके द्वारा जमा नहीं किया गया, दर्शित किया गया है । इसलिए, अनुप्रमाणक प्रतिवादी साक्षी 3, लेखक प्रतिवादी साक्षी 4 और प्रतिवादी साक्षी 5 के द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य कि वे उस समय मौजूद थे जब वसीयतकर्ता द्वारा विल जमा किया गया था, से न केवल वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा द्वारा विल का सम्यक् निष्पादन साबित होता है अपितु उसके द्वारा विल को मुहरबंद करके रजिस्ट्रार के समक्ष उसे जमा करना भी साबित होता है । यदि वादी या प्रतिवादी सं. 1 से 10 में से कोई भी वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा के प्रदर्श एक्स-2 में अंगूठे के निशान और हस्ताक्षर पर आक्षेप करता है तो उन्हें इसे चुनौती देने के लिए इसे सिद्ध करने हेतु कदम उठाना चाहिए था । किन्तु ऐसा कोई कदम नहीं उठाया गया । इसे गंभीर चुनौती के रूप में नहीं लिया गया । इस परिस्थिति का भी उल्लेख किया गया कि विल प्रदर्श एक्स-1 के विरुद्ध चुनौती नहीं दी गई कि यह असली है, इसलिए, इसमें कोई गुणागुण नहीं है ।

13. दोनों निचले न्यायालयों ने विल प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 की असलियत के बारे में एक साथ विचार किया । जहां विल प्रदर्श बी-1

को विभिन्न कारणों से साबित होना नहीं पाया गया था, जिससे अब हमारा संबंध नहीं है, वहीं, बिना इस बात पर विचार किए कि क्या विल प्रदर्श एक्स-1 किसी संदेहास्पद परिस्थिति से घिरी हुई है, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि उक्त विल भी असली और वैध नहीं है । प्रतिवादी साक्षी 11 और प्रतिवादी साक्षी 12 में से किसी भी साक्षी ने साक्षी कठघरे में इसे आरोपित नहीं किया, तथापि, उन्होंने न्यायालय के समाधान हेतु संदेहास्पद परिस्थितियों को दूर करते हुए विल प्रस्तुत की जिसे विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित किया गया था, इस प्रश्न पर विचार किए बिना कि प्रतिवादी साक्षी 3, प्रतिवादी साक्षी 4 और प्रतिवादी साक्षी 5 के साक्ष्य की भिन्नता या कमियों पर आधारित ''हानिरहित परिस्थितियों'' के अलावा संदेहास्पद परिस्थितियों को दूर की जाने वाली संदेहास्पद परिस्थितियां क्या हैं, जिस पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है, वसीयतकर्ता द्वारा विल के निष्पादन में कोई कमी नहीं है । विल प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श एक्स-1 संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है इस बारे में कथित परिस्थितियों पर दोनों निचले न्यायालयों द्वारा एक साथ विचार किया गया था और निस्संदेह विल एक्स-1 के ऊपर गलत तौर पर निष्कर्ष निकाला गया है । जहां प्रत्येक विल की असलियत के बारे में विनिर्दिष्ट निष्कर्ष निकाला जाता है वहां दोनों निचले न्यायालयों को एक विल के बारे में कुछ परिस्थितियों पर प्रथमतः विचार करना चाहिए था और उन्हें संदेहास्पद परिस्थितियां अभिनिर्धारित करते हुए ही दोनों विलों के बारे में यह निष्कर्ष निकालना चाहिए था कि विल असली नहीं है । अपील में, जिला न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय से यह प्रतीत होता है कि यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि विल प्रदर्श बी-1 विभिन्न संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होने के कारण असली नहीं है, बिना इस बात पर समुचित चर्चा किए कि क्या विल प्रदर्श एक्स-1 किसी संदेहास्पद परिस्थिति से घिरी हुई है, उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थियों (डी-11 और डी-12) द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह नहीं कहा जा सकता है कि उस विल के प्रतिपादकों द्वारा संदेहास्पद परिस्थितियों को दूर नहीं किया गया है । इसके अनुप्रमाणन के संदर्भ में, विल प्रदर्श एक्स-1 के निष्पादन के पहलुओं में से किन्हीं पर भी विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा यह परीक्षा करने के लिए विचार नहीं किया गया कि क्या अपील में प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा विस्तार से दिए गए तर्कों में उद्धृत किसी संदेहास्पद परिस्थिति से यह प्रतीत होता है कि विल एक्स-1 का निष्पादन भी संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा हुआ है । अपीलार्थियों ने विल प्रदर्श एक्स-1 को जमा करने के बारे में कोई विश्वसनीय साक्ष्य

प्रस्तुत नहीं किया है, जिसे वादी और अन्य प्रतिवादियों द्वारा भी गंभीरतापूर्वक विवादित नहीं किया गया था । प्रदर्श एक्स-2 के ऊपर जिला रजिस्ट्रार कार्यालय की मुहर या आद्यक्षर नहीं था जो एक अन्य संदेहास्पद परिस्थिति थी जिससे विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि विल प्रदर्श एक्स-1 असली नहीं है, यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा संदेह दूर करने के लिए विल के प्रतिपादक, जो साक्षी कठघरे में नहीं आए, से यह इंगित होता है कि उपर्युक्त निर्दिष्ट परिस्थितियां गुणागुण रहित हैं और वह इस बारे में कोई संदेहास्पद परिस्थिति गठित नहीं करती हैं कि विल प्रदर्श एक्स-1 असली नहीं है ।

14. विद्वान् काउंसेल द्वारा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की उपधारा(2)(ख) का अवलंब लेते हुए विल प्रदर्श एक्स-1 के विरुद्ध उद्भूत आक्षेप में कोई गुणागुण नहीं है । उक्त उपधारा निम्नलिखित है :–

> "**धारा 15. हिन्दू नारी की दशा में उत्तराधिकार के साधारण नियम –**
>
> (1) .....
>
> (2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी –
>
> (क) .....
>
> (ख) कोई सम्पत्ति जो हिन्दू नारी को अपने पति या अपने श्वसुर से विरासत में प्राप्त हुई हो मृतक के किसी पुत्र या पुत्रों के (जिसके अन्तर्गत किसी पूर्व-मृत पुत्र या पुत्री या अपत्य भी आते हैं) अभाव में उपधारा (1) में निर्दिष्ट अन्य वारिसों को उसमें विनिर्दिष्ट क्रम से न्यागत न होकर पति के वारिसों को न्यागत होगी ।"

यह उपधारा मात्र तभी लागू होती है जब एक निर्वसीयत उत्तराधिकार का मामला होता है न कि अन्यथा में । उपर्युक्त अधिनियम, 1956 की धारा 15(2)(ख) के अधीन किया गया उपबंध यह सुनिश्चित करता है कि जहां एक हिन्दू नारी अपने पति या श्वसुर से कोई सम्पत्ति प्राप्त करती है यदि उसके पास कोई पुत्र, पुत्री या पूर्व-मृत पुत्र या पुत्री नहीं है तो वह सम्पत्ति उसके पति या श्वसुर के उत्तराधिकारियों, जैसी भी स्थिति हो, के पास वापस चली जाएगी, वह अपनी सम्पत्ति का वसीयती व्ययन करने से ऐसी नारी को अक्षम या निषिद्ध नहीं करता है । अपने पति या श्वसुर से समुचित

तौर पर प्राप्त सम्पत्ति को भी अपनी विल के अधीन वसीयती उत्तराधिकार द्वारा व्ययन कर सकती है । विद्वान् काउंसेल द्वारा **एस. आर. श्रीनिवास और अन्य** बनाम **वी. एस. पदवथम्मा**[1] वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि अधिनियम, 1956 की धारा 15(2)(ख) का विल प्रदर्श एक्स-2 की वैधता और असलियत की परीक्षा करने में सीधा प्रभाव है, में कोई गुणागुण नहीं है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा उपर्युक्त विनिश्चय में अधिनियम, 1956 की धारा 15(2) के अधीन उद्देश्य बताया गया जो इस प्रकार है :–

> "हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 15 का आधारभूत उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि एक संतानरहित मृत निर्वसीयत हिन्दू नारी की उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति उसी स्रोत में वापस चली जाएगी जिस स्रोत से उसने इसे प्राप्त किया था । यह अधिनियम इसलिए अधिनियमित किया गया है ताकि उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति को पर-व्यक्तियों के हाथों में जाने से रोका जा सके ।"

यह धारा मात्र तभी लागू होती है जब संतानरहित हिन्दू नारी की निर्वसीयत मृत्यु हो जाती है और ऐसे मामलों में नहीं जहां उसके द्वारा वसीयती व्ययन किया जाता है । इस चुनौती में भी कोई गुणागुण नहीं है कि विल प्रदर्श एक्स-1 में वसीयतकर्ता ने पर-व्यक्तियों को वसीयत की थी और उनके अपने नैसर्गिक विधिक उत्तराधिकारियों, अपने पति के उत्तराधिकारियों को न ही की थी जबकि वसीयत सम्पत्तियां अपने पति से उत्तराधिकार में प्राप्त की गई थीं । विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन चार वसीयतदारों में से एक वसीयतकर्ता के चाचा का पुत्र, एक अन्य उसके पति का भाई (द्वितीय प्रतिवादी) और शेष दो उसके पड़ोसी हैं जिनमें से एक उसकी सेवा करने वाली नौकरानी है । उसने अपनी सम्पत्तियों का व्ययन करने के लिए कुछ अन्यों के साथ अपने पति के उत्तराधिकारियों में से मात्र एक को चुना था । इससे यह दर्शित नहीं होता है कि उसके पति के उत्तराधिकारियों को उत्तराधिकार से वंचित करना था । वर्तमान मामले में अन्यथा यह दलील देते हुए कि विल प्रदर्श एक्स-1 एक बनाया हुआ दस्तावेज है और उस दस्तावेज के अधीन नामित डी-11 और एक अन्य वसीयतदार की प्रेरणा पर अस्तित्व में लाया गया था और यह भी कि उस दस्तावेज पर किया गया हस्ताक्षर वसीयतकर्ता का नहीं है जिससे भी विल प्रदर्श एक्स-1 के

---

[1] (2010) 5 एस. सी. सी. 274.

निष्पादन को ऐसी संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई नहीं कही जा सकती है जैसी कि वादी या प्रतिवादी सं. 2 से 10 द्वारा मामले को सिद्ध करने के लिए संयाचना, योजना या प्रयास किया गया है । उपर्युक्त निर्दिष्ट दलीलों में से कोई भी दलील इसके समर्थन में तात्विक नहीं है न ही उनमें से किसी को सिद्ध करने के लिए कोई कदम उठाए गए हैं । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष कि विल प्रदर्श एक्स-1 असली नहीं है क्योंकि यदि इसका निष्पादन संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा हुआ है, यह मूल रूप से त्रुटिपूर्ण और कायम रखे जाने योग्य नहीं है और लक्ष्मी अम्मा द्वारा स्वैच्छिक रूप से अपनी स्वतंत्र इच्छा से उस वसीयत का निष्पादन किया गया है और उस समय वह व्ययन करने के लिए स्वस्थ मस्तिष्क रखती थी जिससे कोई संदेहास्पद परिस्थिति उत्पन्न नहीं होती है जैसा कि मामले में दिए गए साक्ष्यों से साबित किया गया है । अपील में, उद्भूत सारवान् प्रश्न का उत्तर अपीलार्थियों के पक्ष में दिया जाता है, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा विल प्रदर्श एक्स-1 के बारे में निकाला गया निष्कर्ष गलत है और वह विल असली और वैध है ।

15. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया है कि विल प्रदर्श एक्स-1 के बारे में निकाले गए निष्कर्ष को उलटने की दशा में वादी को विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन उन अन्य वसीयतदारों को पक्षकार बनाए जाने का अवसर दिया जाना चाहिए जिन्होंने उन सम्पत्तियों के विभाजन के लिए वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया है जिसमें वादी और प्रतिवादी सं. 2 से 10 को मथू अम्मा, कृष्णनन् नायर की माता के विधिक उत्तराधिकारियों के रूप में विभाजन कराने का अधिकार है । कृष्णनन् नायर की मृत्यु पर उसकी सम्पत्तियों में 1/2 भाग का अधिकार उसकी माता में न्यागत हो गया था और 1/2 भाग लक्ष्मी अम्मा में न्यागत हो गया था । विल प्रदर्श बी-1 को संयुक्ततः कृष्णनन् नायर और लक्ष्मी अम्मा द्वारा निष्पादित किया गया था जिसे असली नहीं पाया गया है । लक्ष्मी अम्मा का विल प्रदर्श एक्स-1 और उस विल के अधीन उसके द्वारा की गई वसीयत मात्र उस सम्पत्ति के आधे हिस्से में ही लागू होगी जो उसने अपने पति से उत्तराधिकार में प्राप्त किया था । विचारण न्यायालय ने इसको पक्षकार के असंयोजन के विवाद्यक का उत्तर वादी के पक्ष में दिया है । उस परिप्रेक्ष्य में यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि मथू अम्मा, स्व. कृष्णनन् नायर की माता के विधिक उत्तराधिकारियों के रूप में वादी और प्रतिवादी सं. 2 से

10 ने उन सम्पत्तियों के ऊपर उसके अधिकार को उत्तराधिकार में प्राप्त किया है जिसे उसने कृष्णनन् की मृत्यु होने पर लक्ष्मी अम्मा के साथ अर्जित किया था । अब, विल प्रदर्श एक्स-1 के अधीन डी-11 और डी-12 के अलावा दो अन्यों ने भी लक्ष्मी अम्मा की सम्पत्तियों में हिस्सा प्राप्त किया है । वाद में पक्षकारों के रूप में उन्हें पक्षकार बनाया जाना वाद में सम्पत्तियों के विभाजन के लिए आवश्यक है । मेरा निष्कर्ष यह है कि वादी को न्यायालय के समक्ष ऐसा पक्षकार बनाए जाने के लिए समुचित आवेदन फाइल करने के लिए हेतु वाद में अतिरिक्त प्रतिवादियों के रूप में उन्हें पक्षकार बनाने हेतु समुचित अवसर उपलब्ध कराया जाना चाहिए ।

16. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा उपर्युक्त निर्दिष्ट अवलंबित विनिश्चयों से ऐसे मामले में दिए गए दस्तावेजों में चर्चा किए जाने की आवश्यकता नहीं है जहां कोई संदेहास्पद परिस्थिति नहीं है जैसा कि वादी और प्रत्यर्थी सं. 2 से 10 द्वारा विल प्रदर्श एक्स-1 के निष्पादन पर आक्षेप करते हुए इसके वसीयतकर्ता द्वारा और इसकी असलियत पर भी कथन किया गया है या सिद्ध किया गया है ।

परिणामतः, वाद में पारित प्रारम्भिक डिक्री अपास्त की जाती है और इस निष्कर्ष के अध्यधीन कि विल प्रदर्श एक्स-1 असली है, मामले में नए सिरे से विचार करने के लिए वापस भेजा जाता है और इस सीमा तक कि वसीयतकर्ता लक्ष्मी अम्मा अपनी विल के अधीन की गई वसीयत की सम्पत्तियों की स्वामी थी जिसे उसने वाद के पक्षकारों के हिस्सों में विभाजन और आबंटन को प्रभावी बनाया है । पक्षकारों को यह निर्देश दिया जाता है कि वे तारीख 25 मार्च, 2013 को निचले न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों ।

अपील उपर्युक्त उपदर्शित रूप से मंजूर की जाती है यह निर्देश देते हुए कि दोनों पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

क.

केन्द्रीय भण्डारण निगम, निर्माण सेल, पनमपिल्ली नगर, कोच्ची

बनाम

वर्गीज के. पुलायत (मृतक) के विधिक प्रतिनिधि और अन्य

तारीख 19 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति (श्रीमती) के. हेमा और न्यायमूर्ति ए. हरि प्रसाद

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 – धारा 13(घ), 20, 30 और 39 [सपठित ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 29, 39 और 41] – मध्यस्थ – पंचाट – आक्षेप – यदि अभिलेख पर के साक्ष्यों से यह साबित होता है कि मध्यस्थ ने पक्षकारों के बीच संविदा के अनुसरण में तथा संबंधित पक्षकारों की समुचित सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् पंचाट दिया है तो ऐसे पंचाट को नैसर्गिक न्याय के अननुपालन करने तथा अपनी अधिकारिता का दुरुपयोग करने या अधिकारिता के बाहर कार्य करने के आधार पर चुनौती दी जा सकती है ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी एक ठेकेदार था । उसने 20,000 एम. टी. सी. गोदाम के साथ आनुषंगिक भवनों, सड़कों, विद्युत व्यवस्थापनों के निर्माण, केन्द्रीय भण्डारण, त्रिचूर पर आन्तरिक और बाह्य सेवाओं के लिए अपीलार्थियों के समक्ष एक निविदा प्रस्तुत की थी । सिविल कार्य का लागत खर्च रु. 30,75,144.14 था । टेंडर रकम रु. 72,41,968.75 था जो लागत खर्च से 127 प्रतिशत ऊपर था । विद्युत कार्य के लिए टेंडर रु. 1,46,028.80 था जो लागत खर्च रु. 1,15,362.75 से 79 प्रतिशत ऊपर था । अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी को संविदा अधिनिर्णीत की । इस संबंध में, तारीख 18 मार्च, 1984 को एक करार निष्पादित किया गया । कार्य आरम्भ होने की तारीख 4 नवम्बर, 1984 नियत की गई थी और कार्य समाप्ति तारीख 3 सितम्बर, 1985 नियत की गई । इसके पश्चात्, कार्य आरम्भ हुआ और विचारणीय सीमा तक कार्य होता रहा । तथापि, कार्य अनुसूची के अनुरूप पूरा नहीं किया जा सका और या तो अभियुक्त की ओर से या अन्य की ओर से व्यतिक्रम हुआ । तारीख 13 अगस्त, 1988 को अपीलार्थियों द्वारा संविदा के विखंडन के परिणामस्वरूप पक्षकारों के बीच विवाद उद्भूत हुआ । प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी ने संविदा करार के खंड 25 का अवलंब लिया और

विवाद्यक/दावे को प्रबंध निदेशक, केन्द्रीय भण्डारण निगम, नई दिल्ली को निर्दिष्ट किया । अपीलार्थियों के प्रबंध निदेशक ने दावों (विवाद्यकों) की संवीक्षा की और यह पाया कि वे 'प्रत्याशित मामलों' के भीतर आते हैं और इसलिए उन्होंने कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया । अतएव, ठेकेदार (प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी) ने अधीनस्थ न्यायाधीश, त्रिचूर के समक्ष 1989 की माध्यस्थम् मूल वाद सं. 772 फाइल की । वाद को अधिनियम की धारा 20 के अधीन फाइल किया गया था । वाद में, अन्य बातों के साथ, वादपत्र में उल्लिखित विवाद्यकों के बारे में पक्षकारों के बीच विवाद्यकों पर न्यायनिर्णयन करने के लिए एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करने की प्रार्थना की गई थी । अपीलार्थियों ने वादपत्र में किए गए कथनों से इनकार करते हुए लिखित कथन फाइल किया । अपीलार्थियों ने वाद खारिज किए जाने की प्रार्थना की । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने तारीख 11 जुलाई, 1996 के निर्णय द्वारा एक मध्यस्थ की नियुक्ति की । इस निर्णय को इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में 1996 की सी. आर. पी. सं. 2003 में चुनौती दी गई । उक्त पुनरीक्षण में इस न्यायालय के समक्ष उद्भूत दो प्रश्नों पर विचार किया गया और उन पर विनिश्चय किया गया । प्रथम प्रश्न यह था कि क्या अधिनियम, 1940 की धारा 20 के अधीन फाइल वाद में माध्यस्थम् के विवाद्यकों को निर्दिष्ट करते हुए निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण कायम रखे जाने योग्य है ? इस न्यायालय का यह निष्कर्ष था कि पुनरीक्षण कायम रखे जाने योग्य है । द्वितीय प्रश्न माध्यस्थम् के कतिपय खंडों के निर्देश में वैधता और औचित्य से संबंधित था । इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर भी विचार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि चूंकि संविदा के अधीन नामोदिष्ट व्यक्ति या तो संविदा में यथाउपबंधित रूप से एक मध्यस्थ की नियुक्ति करने से इनकार कर सकते थे या अपने प्राधिकार में अधित्यक्त कर सकते थे, न्यायालय अन्तर्ग्रस्त विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन करने के लिए एक मध्यस्थ की नियुक्ति करने की अधिकारिता रखता है । यह भी निष्कर्ष निकाला कि प्रश्न जहां कुछ विवाद्यक माध्यस्थम् योग्य हैं या नहीं वहां उस मामले में नियुक्त मध्यस्थ द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है । अभिलेखों से यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा 1996 की सी. आर. पी. सं. 2003 में पारित आदेश अंतिम हो गया था । इसके पश्चात्, दोनों पक्षकारों को नोटिस द्वारा माध्यस्थम् किया गया था । दोनों पक्षकारों ने मध्यस्थ के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए अपनी दलीलों को सिद्ध किया । मध्यस्थ द्वारा दोनों पक्षकारों की सुनवाई की गई । जब मामला मध्यस्थ के समक्ष लम्बित था

तभी मूल ठेकेदार (प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी) की मृत्यु हो गई थी । प्रत्यर्थी अतिरिक्त दावेदार के रूप में अभिवाचित किए गए । मध्यस्थ द्वारा एक पंचाट पारित किया गया और दोनों पक्षकारों को लिखित में नोटिस दिए जाने के पश्चात् उसने इसे अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अधीन न्यायालय के समक्ष फाइल किया । पंचाट पारित करने के पश्चात्, मध्यस्थ को पंचाट में लिपिकीय और मुद्रण संबंधी त्रुटियों का पता चला । इसलिए, मध्यस्थ ने अधिनियम, 1940 की धारा 13(घ) के अधीन शक्तियों का अवलंब लेते हुए मूल पंचाट में आवश्यक सुधार किया । पंचाट से असंतुष्ट होकर, अपीलार्थियों ने अधिनियम, 1940 की धारा 30 के अधीन अधीनस्थ न्यायाधीश, त्रिचूर के न्यायालय के समक्ष एक माध्यस्थम् 2001 की मूल याचिका सं. 27 फाइल की । इसमें कतिपय आधारों पर पंचाट अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई । प्रत्यर्थियों ने पंचाट के विरुद्ध अपीलार्थियों द्वारा उद्भूत अभिकथनों से इनकार करते हुए कार्यवाहियों में प्रति-शपथपत्र फाइल किया । प्रत्यर्थियों ने पंचाट के आधार पर निर्णय प्राप्त करने के लिए माध्यस्थम् 1989 की मूल वाद सं. 772 में 2000 की आई. ए. सं. 926 फाइल की । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने दोनों पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् अपीलार्थियों द्वारा फाइल याचिका खारिज कर दी और वाद में एक डिक्री पारित की । माध्यस्थम् मूल याचिका में पारित उस आदेश को इस अपील में चुनौती दी गई है । प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी एक ठेकेदार था । उसने 20,000 एम. टी. सी. गोदाम के साथ आनुषंगिक भवनों, सड़कों, विद्युत व्यवस्थापनों के निर्माण, केन्द्रीय भण्डारण, त्रिचूर पर आन्तरिक और बाह्य सेवाओं के लिए अपीलार्थियों के समक्ष एक निविदा प्रस्तुत की थी । सिविल कार्य का लागत खर्च रु. 30,75,144.14 था । टेंडर रकम रु. 72,41,968.75 था जो लागत खर्च से 127 प्रतिशत ऊपर था । विद्युत कार्य के लिए टेंडर रु. 1,46,028.80 था जो लागत खर्च रु. 1,15,362.75 से 79 प्रतिशत ऊपर था । अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी को संविदा अधिनिर्णीत की । इस संबंध में, तारीख 18 मार्च, 1984 को एक करार निष्पादित किया गया । कार्य आरम्भ होने की तारीख 4 नवम्बर, 1984 नियत की गई थी और कार्य समाप्ति तारीख 3 सितम्बर, 1985 नियत की गई । इसके पश्चात्, कार्य आरम्भ हुआ और विचारणीय सीमा तक कार्य होता रहा । तथापि, कार्य अनुसूची के अनुरूप पूरा नहीं किया जा सका और या तो अभियुक्त की ओर से या अन्य की ओर से व्यतिक्रम हुआ । तारीख 13 अगस्त, 1988 को अपीलार्थियों द्वारा संविदा के विखंडन के परिणामस्वरूप पक्षकारों के बीच विवाद उद्भूत हुआ । प्रत्यर्थियों

के हित-पूर्वाधिकारी ने संविदा करार के खंड 25 का अवलंब लिया और विवाद्यक/दावे को प्रबंध निदेशक, केन्द्रीय भण्डारण निगम, नई दिल्ली को निर्दिष्ट किया । अपीलार्थियों के प्रबंध निदेशक ने दावों (विवाद्यकों) की संवीक्षा की और यह पाया कि वे 'प्रत्याशित मामलों' के भीतर आते हैं और इसलिए उन्होंने कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया । अतएव, ठेकेदार (प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी) ने अधीनस्थ न्यायाधीश, त्रिचूर के समक्ष 1989 की माध्यस्थम् मूल वाद सं. 772 फाइल की । वाद को अधिनियम की धारा 20 के अधीन फाइल किया गया था । वाद में, अन्य बातों के साथ, वादपत्र में उल्लिखित विवाद्यकों के बारे में पक्षकारों के बीच विवाद्यकों पर न्यायनिर्णयन करने के लिए एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करने की प्रार्थना की गई थी । अपीलार्थियों ने वादपत्र में किए गए कथनों से इनकार करते हुए लिखित कथन फाइल किया । अपीलार्थियों ने वाद खारिज किए जाने की प्रार्थना की । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने तारीख 11 जुलाई, 1996 के निर्णय द्वारा एक मध्यस्थ की नियुक्ति की । इस निर्णय को इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में 1996 की सी. आर. पी. सं. 2003 में चुनौती दी गई । उक्त पुनरीक्षण में इस न्यायालय के समक्ष उद्भूत दो प्रश्नों पर विचार किया गया और उन पर विनिश्चय किया गया । प्रथम प्रश्न यह था कि क्या अधिनियम, 1940 की धारा 20 के अधीन फाइल वाद में माध्यस्थम् के विवाद्यकों को निर्दिष्ट करते हुए निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण कायम रखे जाने योग्य है ? इस न्यायालय का यह निष्कर्ष था कि पुनरीक्षण कायम रखे जाने योग्य है । द्वितीय प्रश्न माध्यस्थम् के कतिपय खंडों के निर्देश में वैधता और औचित्य से संबंधित था । इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर भी विचार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि चूंकि संविदा के अधीन नामोदिष्ट व्यक्ति या तो संविदा में यथाउपबंधित रूप से एक मध्यस्थ की नियुक्ति करने से इनकार कर सकते थे या अपने प्राधिकार में अधित्यक्त कर सकते थे, न्यायालय अन्तर्ग्रस्त विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन करने के लिए एक मध्यस्थ की नियुक्ति करने की अधिकारिता रखता है । यह भी निष्कर्ष निकाला कि प्रश्न जहां कुछ विवाद्यक माध्यस्थम् योग्य हैं या नहीं वहां उस मामले में नियुक्त मध्यस्थ द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है । अभिलेखों से यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा 1996 की सी. आर. पी. सं. 2003 में पारित आदेश अंतिम हो गया था । इसके पश्चात्, दोनों पक्षकारों को नोटिस द्वारा माध्यस्थम् किया गया था । दोनों पक्षकारों ने मध्यस्थ के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए अपनी दलीलों को सिद्ध किया । मध्यस्थ द्वारा दोनों

पक्षकारों की सुनवाई की गई । जब मामला मध्यस्थ के समक्ष लम्बित था तभी मूल ठेकेदार (प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी) की मृत्यु हो गई थी । प्रत्यर्थी अतिरिक्त दावेदार के रूप में अभिवाचित किए गए । मध्यस्थ द्वारा एक पंचाट पारित किया गया और दोनों पक्षकारों को लिखित में नोटिस दिए जाने के पश्चात् उसने इसे अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अधीन न्यायालय के समक्ष फाइल किया । पंचाट पारित करने के पश्चात्, मध्यस्थ को पंचाट में लिपिकीय और मुद्रण संबंधी त्रुटियों का पता चला । इसलिए, मध्यस्थ ने अधिनियम, 1940 की धारा 13(घ) के अधीन शक्तियों का अवलंब लेते हुए मूल पंचाट में आवश्यक सुधार किया । पंचाट से असंतुष्ट होकर, अपीलार्थियों ने अधिनियम, 1940 की धारा 30 के अधीन अधीनस्थ न्यायाधीश, त्रिचूर के न्यायालय के समक्ष एक माध्यस्थम् 2001 की मूल याचिका सं. 27 फाइल की । इसमें कतिपय आधारों पर पंचाट अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई । प्रत्यर्थियों ने पंचाट के विरुद्ध अपीलार्थियों द्वारा उद्भूत अभिकथनों से इनकार करते हुए कार्यवाहियों में प्रति-शपथपत्र फाइल किया । प्रत्यर्थियों ने पंचाट के आधार पर निर्णय प्राप्त करने के लिए माध्यस्थम् 1989 की मूल वाद सं. 772 में 2000 की आई. ए. सं. 926 फाइल की । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने दोनों पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् अपीलार्थियों द्वारा फाइल याचिका खारिज कर दी और वाद में एक डिक्री पारित की । माध्यस्थम् मूल याचिका में पारित उस आदेश को इस अपील में चुनौती दी गई है । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सुस्थिर है कि जब पंचाट वैध माध्यस्थम् करार के आधार पर विधिमान्य निर्देश के परिणामस्वरूप होता है तो मध्यस्थ का पंचाट पक्षकारों पर आबद्धकारी होता है । ऐसे पंचाट की विधिमान्यता के लिए यह आवश्यक नहीं होता है कि पक्षकारों को मध्यस्थ द्वारा दिए गए ऐसे विनिश्चय से अवश्य ही सहमत होना चाहिए । हमारे प्रयोजन के लिए निम्नलिखित पहलू सुसंगत हैं । पक्षकारों के बीच संविदा करार में संविदा की शर्तों को उपदर्शित करते हुए एक अध्याय उपबंधित है । इसका खंड 25, पारस्परिक करार द्वारा किए गए सुधार के पश्चात् इस प्रकार है – "**खंड 25** – सिवाय, जहां संविदा में अन्यथा उपबंधित हैं, विनिर्देशों, परिकल्पनाओं, नक्शाओं और इसमें पूर्व उल्लिखित अनुदेशों के अर्थान्वयन के बारे में और कारीगरी की गुणवत्ता और कार्य में प्रयुक्त सामग्रियों के बारे में उद्भूत सभी प्रश्नों और विवाद्यकों या किसी अन्य प्रश्न, दावा, अधिकार,

मामला या चीज, जो भी हो, किसी भी तरीके से उद्भूत हुआ हो या संविदा, परिकल्पनाओं, नक्शों, विनिर्देशों, प्राक्कलनों, अनुदेश, आदेशों से संबंधित हो या इन शर्तों या कार्य से संबंधित अन्यथा या उसके निष्पादन या निष्पादन में असफल रहने चाहे वे कार्य उन्नति पर रहने के दौरान उद्भूत हुए हों या उसकी समाप्ति या परित्याग के पश्चात् उद्भूत हुए हों, को प्रबंध निदेशक, केन्द्रीय भण्डारण निगम द्वारा विवाद्यक के समय पर नियुक्त व्यक्ति के एकमात्र मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाएगा या यदि कोई प्रबंध निदेशक, केन्द्रीय भण्डारण निगम नहीं है तो ऐसी नियुक्ति के समय पर उक्त केन्द्रीय भण्डारण निगम के प्रशासनिक प्रमुख द्वारा नियुक्त एकमात्र मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाएगा । ऐसे मध्यस्थ की ऐसी नियुक्ति पर कोई आक्षेप नहीं किया जाएगा क्योंकि वह एक निगम कर्मचारी के रूप में नियुक्त होता है, कि वह उन मामलों पर विचार करता है जो संविदा से संबंधित होता है और कि अपने कर्तव्यों के दौरान निगम कर्मचारी के रूप में वह विवादित या मतभेद वाले सभी मामले या किसी भी मामले पर अपना मत व्यक्त कर सकता है । मध्यस्थ का, जिसे मूल रूप से मामला निर्दिष्ट किया जाता है, स्थानांतरित होने या अपना पद खाली करने या किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ होने से ऐसे स्थानांतरण, पद खाली करने या कार्य में असमर्थ होने के समय पर यथापूर्वोक्त ऐसा प्रबंध निदेशक या प्रशासनिक प्रमुख संविदा के निबंधनों के अनुसार मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करेगा । ऐसा व्यक्ति उस प्रक्रम से निर्देश में कार्यवाही करने का हकदार होगा जिस समय पर उसके पूर्वाधिकारी द्वारा छोड़ा गया था । इस संविदा के निबंधनों में यह भी है कि उपर्युक्त रूप से ऐसे प्रबंध निदेशक या प्रशासनिक प्रमुख केन्द्रीय भण्डारण निगम द्वारा नियुक्त व्यक्ति के अलावा कोई अन्य व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं करेगा और यदि किसी कारण से यह संभाव्य नहीं है कि मामले को किसी भी प्रकार से मध्यस्थ को निर्दिष्ट नहीं किया जाएगा । मध्यस्थ पंचाट के लिए कारण भी देगा । माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के पूर्वोक्त उपबंध अथवा उसके अधिनियमन के लिए किसी कानूनी उपांतरण और उसके अधीन बनाए गए नियम और तत्समय प्रवृत्त विधि इस खंड के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियों में लागू होंगे । संविदा के निबंधनों में यह भी है कि माध्यस्थम् का अवलंब लेने वाले पक्षकार इस खंड के साथ प्रत्येक ऐसे विवाद्यक के संबंध में दावाकृत रकम या रकमों के अधीन माध्यस्थम् को विवाद्यक या विवाद्यकों को निर्दिष्ट करेंगे । संविदा के निबंधनों में यह भी है कि यदि ठेकेदार (ठेकेदारों) निगम से परिसीमा अवधि 90 दिन के

भीतर लिखित में किसी दावे (दावों) के संबंध में माध्यस्थम् के लिए कोई मांग करता है/नहीं करता है कि संदाय के लिए बिल तैयार है तो ठेकेदार (ठेकेदारों) का दावा त्यक्त होना समझा जाएगा और पूर्णरूपेण वर्जित समझा जाएगा और निगम इन दावों के संबंध में संविदा के अधीन अपने सभी दायित्वों से उन्मोचित और अवमुक्त हो जाएगा । मध्यस्थ (मध्यस्थों) पक्षकारों की सहमति से पंचाट करने और प्रकाशित करने के लिए समय नियत कर सकता है ।" (पैरा 9 और 12)

प्रत्यर्थियों की शिकायत यह है कि अपीलार्थियों ने माध्यस्थम् के माध्यम से विवाद्यक हल करने के लिए कदम उठाने से इनकार कर दिया था और इसलिए, वे एक मध्यस्थ की नियुक्ति कराने के लिए न्यायालय में आने के लिए बाध्य हुए । तथापि, मध्यस्थ की नियुक्ति और पंचाट पारित करने के लिए मामले पहले से ही निष्कर्षित हैं । अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने इस न्यायालय का ध्यान उपर्युक्त उल्लिखित खंडों की ओर आकर्षित किया है जिन्हें प्रत्याशित मामले खंड कहा गया है । संविदा करार का खंड 2 विलम्ब के लिए प्रतिकर के बारे में है । यह अनुध्यात करता है कि टेंडर में यथाप्रविष्ट कार्य करने के लिए मंजूर समय का ठेकेदार द्वारा कठोरतः पालन करना चाहिए । यह भी कथन करता है कि ठेकेदार अपीलार्थियों को प्रतिकर संदाय करेगा और उसकी मात्रा उस प्रबंध अभियन्ता द्वारा विनिश्चित किया जाएगा जिसका लिखित में विनिश्चय अंतिम समझा जाएगा । खंड 3 ठेकेदार द्वारा विलम्ब कारित करने या संविदा के निष्पादन के लिए आन्तरिक कारीगरी नियोजित करने का निरीक्षण करने के लिए आशयित है । यह भी कि भारसाधक अभियन्ता को इसमें परिगणित मामलों के संबंध में विनिश्चय करने की शक्ति दी गई है । संविदा का खंड 5 कतिपय आधारों पर कार्य समाप्ति के लिए समय विस्तार से संबंधित है । अपीलार्थियों के भारसाधक अभियन्ता को ऐसे मामलों में विनिश्चय लेने की शक्ति दी गई थी । खंड 8-क अपीलार्थियों द्वारा अभिलिखित मापन के बारे में आक्षेप फाइल करने के लिए ठेकेदार के अधिकार से संबंधित है । भारसाधक अभियन्ता और ठेकेदार द्वारा लिए गए विनिश्चय में उसे विवाद्यक के बारे में कोई अधिकार नहीं होगा । खंड 10-ग सामग्रियों और/या श्रमिकों की मजदूरियों के मूल्य में वृद्धि से संबंधित है । प्रबन्धक अभियन्ता मामले में विनिश्चय लेने के लिए नामित प्राधिकारी है और उसका विनिश्चय अंतिम होगा और ठेकेदार पर आबद्धकर होगा । खंड 12 विनिर्देशों और परिकल्पनाओं में उपांतरण से संबंधित है । इस खंड में

सुधार स्लिप द्वारा पक्षकारों की पारस्परिक सहमति से सुधार किया गया है और यह भारसाधक अभियन्ता को इसमें कथित मामलों के संबंध में अंतिम विनिश्चय लेने के लिए सशक्त करता है । अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह जोरदार तर्क दिया कि मध्यस्थ ने उपर्युक्त कथित खंडों के क्षेत्र और प्रभाव पर विचार किए बिना मामलों में विनिश्चय किया जिन्हें वस्तुतः माध्यस्थम् के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया था । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि ये खंड वैधतः 'प्रत्याशित मामलों' के खंड के रूप में नहीं माने जा सकते हैं । उनके अनुसार ये सभी मामले माध्यस्थम् को प्रस्तुत किए गए थे । प्रत्यर्थियों का निवेदन यह है कि अपीलार्थियों ने किसी भी तात्विक समय पर प्रत्याशित मामलों के मुद्दे को नहीं उठाया है । इस न्यायालय का ध्यान मध्यस्थ के समक्ष प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल दावा कथन, अपीलार्थियों द्वारा फाइल प्रति कथन और प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल प्रत्युत्तर की ओर दिलाया गया है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि मध्यस्थ ने सम्पूर्ण विवाद्यकों को संज्ञान में लिया और वह ऐसा करने के लिए सक्षम था । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि संविदा में यह उपबंध करने वाले कतिपय खंडों के मात्र मौजूदगी से कि विशिष्ट मामले पर नामनिर्दिष्ट प्राधिकारी का विनिश्चय अंतिम हो जाएगा और यह स्वयमेव ही इस संबंध में उद्भूत दावों से दावेदारों के 'प्रत्याशित मामलों' की रिष्टि के भीतर और/या वर्जन के भीतर ऐसे मामलों को लाने के लिए आबद्धकर नहीं होगा । प्रत्यर्थियों की विनिर्दिष्ट दलील यह है कि उन पहलुओं पर ऐसे विनिश्चय का अस्तित्व प्राथमिक होता है और यह प्रत्याशित मामलों के खंडों का अवलंब लेने के लिए पूर्व-अपेक्षित आवश्यकता है । प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह है कि प्राधिकारी, जो उपखंडों द्वारा नामनिर्दिष्ट होना कथित है, ने उन मामलों से संबंधित कोई विनिश्चय नहीं लिया है । प्रत्यर्थियों की यह भी दलील है कि ऐसे विनिश्चय जिसे नामित प्राधिकारी द्वारा लिया गया है, पर अपना पक्षकथन रखने के लिए दावेदार को युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् विचार किया जाना चाहिए था । 'प्रत्याशित मामलों' के संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा न्यायोचित और ऋजुतः कार्य करना चाहिए । ऐसे मामलों में विनिश्चय प्रभावित दावेदार को नोटिस देने के पश्चात् और उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् किया जाना चाहिए । प्रत्यर्थियों के अनुसार इस मामले में, इन मामलों में से किसी के भी संबंध में ऐसा कुछ नहीं किया गया । इस न्यायालय का ध्यान मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट की ओर दिलाया गया । दोनों पक्षकारों द्वारा उद्भूत दलीलों का दोनों

पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के सविस्तार कथन, कथित दावे और प्रतिदावे के साथ प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर मध्यस्थ द्वारा विस्तारपूर्वक विचार किया गया था । यह प्रतीत होता है कि प्रदर्श सी-1 से प्रदर्श सी-85 तक दावेदारों (इसमें के प्रत्यर्थी) की ओर से विचारित किए गए थे । प्रदर्श आर-1 से प्रदर्श आर-45 प्रत्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत किए गए थे । पंचाट के परिशीलन से यह सुस्पष्ट होता है कि मध्यस्थ ने उद्भूत विवाद्यकों पर मनमाने तरीके से विचार किया था और न्यायालय द्वारा माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया गया था । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया है कि यद्यपि अपीलार्थियों द्वारा अवलंबित कतिपय खंडों को उन पर समुचित विनिश्चय लिए जाने के लिए नामित अधिकारी के प्राधिकार को दर्शित किया गया था, कि अधिकार का समुचित तौर पर प्रयोग नहीं किया गया था । इसलिए, मध्यस्थ के लिए तथाकथित 'प्रत्याशित मामलों' पर विचार करने में कोई अड़चन नहीं था । (पैरा 13, 14, 15, 16 और 17)

संविदा के खंडों में 'प्रत्याशित मामले' से संबंधित विधि की निम्नलिखित निबंधनों में संवीक्षा की जा सकती है । संविदा के खंड में 'प्रत्याशित मामले' की न्यायनिर्णयन करने की अपेक्षा नहीं है क्योंकि पक्षकार पहले से ही नामित न्यायनिर्णायक के माध्यम से विवाद्यकों का हल करने के लिए सहमत थे । 'प्रत्याशित मामले' के रूप में खंड गठित किए गए हैं, जो न्यायनिर्णयन की प्रक्रिया के लिए उपबंध करते हैं । यह याद रखना चाहिए कि किसी माध्यस्थम् करार का सही सार विवाद्यकों/मतभेदों की दशा में मामले में मध्यस्थ करना है । इसलिए, संविदा में ऐसे खंड समझौते के आधार को नष्ट करने के लिए 'प्रत्याशित मामले' के रूप में वस्तुतः हस्तक्षेप नहीं करते हैं । नामित न्यायनिर्णायक को विधिक अपेक्षाओं और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करने के पश्चात् मामले में विनिश्चय करना चाहिए । प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि अपीलार्थियों द्वारा अवलंबित खंड 'प्रत्याशित मामले' गठित नहीं करते हैं । यह भी दलील दी कि मध्यस्थ के समक्ष दावेदारों द्वारा प्रत्युत्तर फाइल करने के पश्चात् भी अमध्यस्थता के पहलू या प्रत्याशित मामलों का प्रश्न अपीलार्थियों द्वारा मध्यस्थ के समक्ष उद्भूत नहीं किया गया था । अपीलार्थियों द्वारा मध्यस्थ के समक्ष इस प्रश्न पर विनिश्चय करने के लिए निवेदन करते हुए कोई पृथक् आवेदन फाइल नहीं किया गया था कि क्या उक्त खंड माध्यस्थम् के अधीन है या नहीं । अतएव, इस समय बिन्दु पर प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि ऐसे अभिवाक् उद्भूत करते हुए उनकी सुनवाई नहीं की जा सकती

है । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से यह प्रतीत होता है कि कतिपय खंडों की अमध्यस्थता का प्रश्न इस अपील में प्रथम बार उद्भूत किया गया था । तथापि, इस बात पर विचार करना ठीक और समुचित होगा कि क्या अपीलार्थी कम-से-कम इस प्रक्रम पर ऐसे अभिवाक् को उद्भूत करने के हकदार हैं । आक्षेपित पंचाट का ध्यानपूर्वक परिशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि मध्यस्थ ने पक्षकारों द्वारा उद्भूत दावों और प्रतिदावों पर विस्तारपूर्वक विचार किया था । यह प्रतीत होता है कि विचार के लिए आठ दावों को उद्भूत किया गया था । यह प्रकट होता है कि अपीलार्थियों ने मध्यस्थ के समक्ष इन आठों दावों की अमध्यस्थता के बारे में कोई आक्षेप उद्भूत नहीं किया था । दावा सं. 1 अंतिम बिल (प्रदर्श आर-2) के अनुसार अतिशेष रकम के संदाय से संबंधित है । मध्यस्थ ने प्रत्यर्थियों को 21,057/- रुपए अधिनिर्णीत किया, यह निष्कर्ष निकालते हुए कि संकर्म लेखा अनुभाग (डब्ल्यू. ए. अनुभाग) द्वारा सिफारिश 21,057/- रुपए की वसूली समुचित नहीं थी । इस तथ्यात्मक निष्कर्ष को इस कार्यवाही में चुनौती नहीं दी जा सकती है । दावा सं. 2 श्रमिक प्रभारों, स्टील मदों आदि के खर्चों में बढ़ोतरी के लिए बकाए प्रतिकर से संबंधित है । करार में सुसंगत खंड 10-ग है । मध्यस्थ ने दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत तात्विक दस्तावेजों पर विचार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी/दावेदार 13,62,175/- रुपए अपीलार्थियों से पाने के हकदार हैं । इस निष्कर्ष के लिए विनिर्दिष्ट कारण कथित किए गए थे । इस निष्कर्ष के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था कि संविदा करार के खंड 10-ग में यथाउपबंधित प्रबंधक अभियन्ता या भारसाधक अभियन्ता समुचित तौर पर इस मामले का न्यायनिर्णयन कर सकता था । प्रत्याशित मामलों के बारे में आबद्धकर पूर्व निर्णयों से प्रकट होने वाले सिद्धांत जब इस मामले में लागू किए जाते हैं तो यह प्रतीत होता है कि यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं है कि प्राधिकृत अधिकारी ने विधिक आवश्यकताओं के अनुसार अनुपालन करते हुए समुचित विनिश्चय ले सकता था । इसलिए, यह खंड प्रत्याशित मामलों के अधीन नहीं आता है । दावा सं. 3 उस अभिकथित रकम की वापसी से संबंधित है जिसे अपीलार्थियों द्वारा समय विस्तार के अभिवाक् पर प्रत्यर्थियों के बिलों से रोक लिया गया था । मध्यस्थ ने मामले पर विचार करने के पश्चात् यह पाया कि 56,000/- रुपए वस्तुत: प्रत्यर्थियों के बिलों से वसूल किया गया था जैसाकि बिल प्रदर्श आर-2 से प्रतीत होता है । उसे वापस करने का आदेश दिया गया था । मध्यस्थ द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यह अपीलार्थी ही थे जिन्होंने कार्य पूरा नहीं करने के

कारण संविदा भंग किया था और उन्हें कार्य पूरा करने के लिए 31 मई, 1986 से आगे समय-विस्तार मंजूर नहीं किया गया था । पंचाट से यह सुस्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थियों द्वारा उद्भूत दावा सं. 4, 5 और 8 को मध्यस्थ ने नामंजूर कर दिया था । प्रत्यर्थियों ने इस नामंजूरी को चुनौती नहीं दी है । मध्यस्थ द्वारा दावा सं. 6 को 18,20,000/- रुपए के कुल दावे के विरुद्ध मात्र 8,94,472/- रुपए तक ही मंजूर किया था । मध्यस्थ द्वारा रकम मंजूर करने के लिए संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से कारण दिए गए हैं । इस दावे को उप-दावों में प्रकट किया गया है और इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है । जैसाकि पूर्व में उल्लिखित किया जा चुका है, इन निष्कर्षों के विरुद्ध अपील पर यह न्यायालय सुनवाई नहीं कर सकता है । इस मामले में यह भी कि संविदा द्वारा प्राधिकृत अधिकारी ने विधिक आवश्यकताओं का अनुपालन करते हुए गुणागुणों पर विनिश्चय नहीं किया था । इसलिए, अपीलार्थियों की यह दलील कि यह दावा भी माध्यस्थम् के क्षेत्र के परे है, कायम रखे जाने योग्य नहीं है । (पैरा 20, 21, 22, 23, 24, 25 और 26)

उपर्युक्त चर्चा से, यह सुस्पष्ट होता है कि मध्यस्थ ने सही परिप्रेक्ष्य में मामले पर विचार किया था । उन्होंने प्रत्येक दावों को या तो मंजूर करने या नामंजूर करने के लिए विनिर्दिष्ट कारण दिए हैं । अपीलार्थियों ने यह दलील दी कि मध्यस्थ ने उन मामलों का विनिश्चय करते हुए अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य किया जो माध्यस्थम् के अधीन नहीं थे, पूर्णतया अस्वीकार्य है । अतएव, इस मुद्दे को भी अपीलार्थियों के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है । अपीलार्थियों के ज्येष्ठ विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि मध्यस्थ ने अधिनिर्णीत रकम के लिए ब्याज मंजूर करने में गंभीर त्रुटि कारित की है । अपीलार्थियों के अनुसार, मध्यस्थ ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त नहीं था । इसलिए, पंचाट इस आधार पर ही अपास्त किए जाने योग्य है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि अपीलार्थी ब्याज अधिनिर्णीत करने को चुनौती देने के लिए इस अपील में कोई आधार उद्भूत करने में असफल रहे । यह सत्य है कि अपील ज्ञापन में दिए गए आधारों से मध्यस्थ द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत करने के विरुद्ध कोई चुनौती दर्शित नहीं होती है । अपीलार्थियों ने अतिरिक्त आधारों को जोड़ने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 2 और आदेश 6, नियम 17 और धारा 151 का अवलंब लेते हुए 2012 की आई. ए. सं. 2056 फाइल की है । अपील, तारीख 22 जुलाई, 2009 को प्रस्तुत किया

गया था । 2012 की आई. ए. सं. 2056 को तारीख 14 अगस्त, 2012 को फाइल किया गया था । इस आवेदन में अपीलार्थियों ने अन्य बातों के साथ अन्य आधारों पर ब्याज अधिनिर्णीत करने की सत्यता को विवादित किया था । प्रत्यर्थियों ने संशोधित आवेदन का जोरदार विरोध करते हुए प्रति-शपथपत्र फाइल किया था । यह दलील दी कि अपीलार्थियों द्वारा संशोधन की ईप्सा करने के लिए अवलंबित उपबंध इस मामले में लागू नहीं होते हैं । प्रस्थापित संशोधन निश्चित तौर पर परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है । आगे अपीलार्थियों ने पंचाट के ब्याज भाग के बारे में चुनौती देने के लिए कोई न्यायालय शुल्क संदत्त नहीं किया है । प्रत्यर्थियों के गणना के अनुसार, ब्याज को 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर कतिपय रकमों के लिए तारीख 31 अक्तूबर, 1988 से और शेष अधिनिर्णीत रकमों के लिए तारीख 30 नवम्बर, 1999 से मंजूर किया गया था । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थियों ने केरल न्यायालय शुल्क और वाद मूल्यांकन अधिनियम की अनुसूची-II के अनुच्छेद 4(ii) के अधीन मात्र 43,876/- रुपए के लिए ही न्यायालय शुल्क संदत्त किया है । न्यायालय शुल्क 1,05,758/- रुपए देय था जो मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क के प्रयोजन के लिए ब्याज की मात्रा पर संगणित किया गया था । इस संबंध में, प्रत्यर्थियों द्वारा उद्भूत दलीलें वैधतः स्वीकार्य हैं । ब्याज पंचाट के विरुद्ध चुनौती अत्यधिक विलम्बित प्रक्रम पर दी गई है और यह भी कि यह समुचित न्यायालय शुल्क अदायगी के बिना फाइल की गई है । इसलिए, अपीलार्थियों को पंचाट के विरुद्ध इस दलील को उद्भूत करना मंजूर नहीं किया जा सकता है । अतएव, संशोधन के लिए आवेदन विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है । इसलिए, इसे खारिज किया जाता है । स्वीकृततः, यह ऐसा मामला है जिसे ब्याज अधिनियम, 1978 आरम्भ होने के पश्चात् मध्यस्थ के समक्ष निर्दिष्ट किया गया था । ब्याज अधिनियम, 1839 (पुराना अधिनियम) के अधीन मध्यस्थ निर्देश के संबंध में ब्याज अधिनिर्णीत नहीं कर सकता था । (पैरा 27, 28, 29 और 30)

अधिनियम, 1978 की धारा 29 ब्याज मंजूर करने की न्यायालय की शक्ति के बारे में है जहां पंचाट धन संदाय के लिए है । न्यायालय ऐसे दर पर डिक्री की तारीख से डिक्री में ब्याज मंजूर करने के लिए सशक्त है जैसा कि न्यायालय पंचाट द्वारा अधिनिर्णीत मूल रकम पर संदत्त करने के लिए युक्तियुक्त समझता है और डिक्री द्वारा पुष्टि करता है । इस मामले में, मध्यस्थ ने डिक्री की तारीख तक ही ब्याज मंजूर किया है । इसलिए,

मध्यस्थ द्वारा या तो ब्याज मंजूर करने में या उस तरीके में जिसमें ब्याज मंजूर किया है, कोई अवैधता नहीं है । इस मुद्दे को भी अपीलार्थियों के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है । उपर्युक्त चर्चा से, यह सुस्पष्ट होता है कि मध्यस्थ ने कोई अवचार कारित नहीं किया है जैसाकि अपीलार्थियों द्वारा अभिकथित किया गया है । अपीलार्थियों की यह दलील कि संविदा करार में उपर्युक्त उल्लिखित खंड माध्यस्थम् के क्षेत्र के परे है, कायम रखे जाने योग्य नहीं है । मध्यस्थ, पंचाट में विनिर्दिष्ट दर पर ब्याज पर विचार करने और उसे मंजूर करने के लिए वैधतः न्यायानुमत है । न्यायालय, पंचाट में कोई विधिक त्रुटि नहीं पाता है । परिणामतः, न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई कारण नहीं पाता है कि अधीनस्थ न्यायाधीश ने पंचाट अपास्त करने के लिए अपीलार्थियों के दावे को नामंजूर करने में कोई त्रुटि कारित की है । न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि पंचाट सभी प्रकार से निश्चित तौर पर न्यायोचित है और इसे अपास्त करने का कोई कारण नहीं है । यद्यपि, न्यायालय अधीनस्थ न्यायाधीश के इस मत से सहमत है कि पंचाट अपास्त करने की याचिका वैधतः मंजूर किए जाने योग्य नहीं है, न्यायालय यह निष्कर्ष निकालने के लिए निचले न्यायालय द्वारा कथित कारणों को अनुमोदित नहीं करता है । न्यायालय उपर्युक्त निष्कर्ष निकालने के लिए नए सिरे से मामले पर विस्तारपूर्वक विचार किया है । तद्नुसार, यह मुद्दा विनिश्चित किया जाता है । इसमें विचार के लिए उद्भूत प्रश्नों में से एक प्रश्न यह है कि क्या इस मामले में प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल प्रति-आक्षेप वैधतः कायम रखे जाने योग्य है । अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रति-आक्षेप फाइल करने का अधिकार एक सारवान् अधिकार है और न कि प्रक्रियात्मक । अधिनियम, 1978 की धारा 41 न्यायालय की प्रक्रिया और शक्ति के बारे में है । अधिनियम, 1978 की धारा 41 का खंड (क) विचारण न्यायालय और अपील न्यायालय द्वारा अनुसरित प्रक्रिया विहित करता है । इन दोनों न्यायालयों द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अनुसरण में है । उक्त धारा का खंड (ख), अधिनियम, 1978 की अनुसूची-II में आने वाले मामलों के संबंध में आदेशों को करने की उन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने के लिए न्यायालय को सशक्त करता है । धारा 41 का परन्तुक यह स्पष्ट करता है कि अन्तरिम आदेश पारित करने की खंड (ख) के अधीन साधारण शक्ति का प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जा सकता है जो कि मध्यस्थ में निहित किसी शक्ति के प्रतिकूल हो । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि चूंकि प्रति-आक्षेप कुछ नहीं अपितु

एक अपील है, इसलिए वस्तुतः एक प्रति अपील एक अपील सभी गुण रखती है । अधिनियम, 1978 की धारा 41 मात्र यह विहित करती है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में विहित प्रक्रिया, अधिनियम, 1978 की धारा 39 की अपीलों में भी लागू होगी । चूंकि अधिनियम, 1978 की धारा 39 के अधीन प्रति-आक्षेप फाइल करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया है इसलिए इसे अधिनियम, 1978 की धारा 41 के साथ नहीं पढ़ा जा सकता है । (पैरा 33, 34, 35 और 36)

अपीलार्थियों ने अधिनियम, 1978 की धारा 39(1)(vi) के अधीन इस न्यायालय का अवलंब लिया है । निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का डिक्रीत भाग मध्यस्थ के पंचाट से पूर्णतया बेतुका है । निचले न्यायालय के निर्णय के अंतिम भाग से यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों द्वारा फाइल अधिनियम, 1978 की धारा 30 के अधीन याचिका खारिज कर दी गई थी और पंचाट स्वीकार करते हुए वाद डिक्री कर दी गई थी । तथापि, इसके पश्चात् पारित डिक्री में मंजूर रकम पंचाट के निबंधनों के पूर्णतया विरुद्ध है । अधिनियम, 1978 की धारा 17 का यह समादेश है कि निर्णय, यदि पंचाट की संपुष्टि की जाती है, तो वह पंचाट के अनुसरण में होगा । इस व्यवस्था के बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता है कि डिक्री निर्णय के निबंधनों में होगी । यहां निर्णय और डिक्री के निबंधनों में पंचाट से भिन्नता है । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों द्वारा किए गए दावों और मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत रकमों को मिश्रित करते हुए वस्तुतः गंभीर त्रुटि कारित की है । पंचाट के निबंधनों में वाद में डिक्री करने के बजाय, पंचाट में दर्शित रकमों को अंगीकार करते हुए विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों द्वारा दावाकृत रकमों को मंजूर करने में गलती की है । प्रत्यर्थियों का निवेदन यह है कि निचले न्यायालय के निर्णय और डिक्री में की गई भूल उनकी जानकारी में तभी आया जब उसकी प्रमाणित प्रति को उन्होंने प्राप्त किया । निश्चित तौर पर यह दोनों पक्षों के प्रतिकूल है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि इस न्यायालय ने लिपिकीय और गणितीय भूल सुधार के लिए निर्णय और डिक्री में संशोधन करने हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 152 के अधीन निहित अपनी अधिकारिता का अवलंब लिया है । यह भी निवेदन किया कि पक्षकारों को अत्यधिक परेशानी होगी यदि पंचाट के विरोधाभास में रहते हुए निर्णय और डिक्री मंजूर की जाती है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 152 न्यायालय को लिपिकीय या गणितीय भूल सुधार करने के लिए निर्णयों,

डिक्रियों या आदेशों में संशोधन करने की शक्ति देती है । भूल किसी दुर्घटनावश या लोप के कारण हो सकती है । यह न्यायालय को किसी भी समय पर इसे सही करने की शक्ति देती है । न्यायालय इस शक्ति का अवलंब या तो स्वयं अपनी ओर से या पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर ले सकता है । अधिनियम, 1978 की धारा 17 इस बात पर जोर देती है कि डिक्री पंचाट के निबंधनों के अनुसार होगी । अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के परिशीलन से यह सुस्पष्ट होता है कि न्यायालय द्वारा पारित डिक्री में विभिन्न शीर्षकों के अधीन अंकों में भूल मात्र असावधानी के कारण हुई है । इसलिए, यह न्यायालय अधिनियम, 1978 की धारा 17 की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 152 के अधीन शक्तियों का अवलंब लेते हुए डिक्री के विरुद्ध प्रत्यर्थियों द्वारा उद्भूत आक्षेप को मंजूर किया है । यह मुद्दा भी प्रत्यर्थियों के पक्ष में विनिश्चित किया जाता है । (पैरा 38, 39 और 40)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 1 एस. सी. सी. 594 : **पी. आर. शाह, शेयरर्स और स्टाक ब्रोकर्स प्रा. लि.** बनाम **बी. एच. एच. सिक्यूरिटीज प्रा. लि. और अन्य ;**	9
[2011]	(2011) 5 एस. सी. सी. 758 : **जे. जी. इंजीनियर्स प्रा. लि**. बनाम **भारत संघ और एक अन्य ;**	19
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 357 : **भारत संचार निगम लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **मोटोरोला इंडिया प्रा. लि. ;**	18
[2009]	(2009) 12 एस. सी. सी. 1 : **राजस्थान राज्य और एक अन्य** बनाम **फेरो कंकरीट कंस्ट्रक्शन प्रा. लिमिटेड ;**	32
[2001]	(2001) 8 एस. सी. सी. 482 : **महाराष्ट्र राज्य विद्युत परिषद्** बनाम **स्टेरिलाईट इंडस्ट्रीज (इंडिया) और एक अन्य ;**	9

[1999]	(1999) 4 एस. सी. सी. 423 : **अधीक्षण अभियन्ता और अन्य** बनाम **बी. सुब्बा रेड्डी** ;	36
[1992]	ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 732 : **सचिव, उड़ीसा सरकार, सिंचाई विभाग और अन्य** बनाम **जी. सी. राय** ;	30
[1997]	(1997) 2 एस. सी. सी. 469 : **उड़ीसा राज्य** बनाम **बी. एन. अग्रवाल** ;	31
[1988]	ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1340 : **इंडियन आयल कार्पोरेशन लि.** बनाम **इंडियन कार्बन लि.** ;	9
[1987]	(1987) 2 एस. सी. सी. 160 : **कर्नाटक राज्य** बनाम **श्री रामेश्वर राईस मिल्स** ;	18
[1987]	ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 2316 : **नगर निगम, दिल्ली** बनाम **मैसर्स जगन नाथ, अशोक कुमार और एक अन्य** ;	9
[1973]	ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2065 : **प्रकाश चन्द खुराना आदि** बनाम **हरनाम सिंह और अन्य** ।	9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की माध्यस्थम् अपील सं. 24 और 2009 की प्रति-आक्षेप सं. 68.

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 39 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एन. एन. सुगुनापालन (ज्येष्ठ अधिवक्ता), एम. आर. वेणुगोपाल और श्रीमती धान्या पी. अशोकन्

प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 की ओर से सर्वश्री राजीव ए. जार्ज और एपेन ए. जार्ज (अधिवक्ता)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. हरि प्रसाद ने दिया ।

न्या. हरि प्रसाद – यह अपील माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 39 के अधीन

विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिन्होंने अधिनियम की धारा 30 के अधीन शक्तियों का अवलंब लेते हुए पंचाट को अपास्त करने से इनकार कर दिया था ।

2. स्वीकृततः, संक्षिप्त तथ्य निम्नलिखित हैं – प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी एक ठेकेदार था । उसने 20,000 एम. टी. सी. गोदाम के साथ आनुषंगिक भवनों, सड़कों, विद्युत व्यवस्थापनों के निर्माण, केन्द्रीय भण्डारण, त्रिचूर पर आन्तरिक और बाह्य सेवाओं के लिए अपीलार्थियों के समक्ष एक निविदा प्रस्तुत की थी । सिविल कार्य का लागत खर्च रु. 30,75,144.14 था । टेंडर रकम रु. 72,41,968.75 था जो लागत खर्च से 127 प्रतिशत ऊपर था । विद्युत कार्य के लिए टेंडर रु. 1,46,028.80 था जो लागत खर्च रु. 1,15,362.75 से 79 प्रतिशत ऊपर था । अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी को संविदा अधिनिर्णीत की । इस संबंध में, तारीख 18 मार्च, 1984 को एक करार निष्पादित किया गया । कार्य आरम्भ होने की तारीख 4 नवम्बर, 1984 नियत की गई थी और कार्य समाप्ति तारीख 3 सितम्बर, 1985 नियत की गई । इसके पश्चात्, कार्य आरम्भ हुआ और विचारणीय सीमा तक कार्य होता रहा । तथापि, कार्य अनुसूची के अनुरूप पूरा नहीं किया जा सका और या तो अभियुक्त की ओर से या अन्य की ओर से व्यतिक्रम हुआ । तारीख 13 अगस्त, 1988 को अपीलार्थियों द्वारा संविदा के विखंडन के परिणामस्वरूप पक्षकारों के बीच विवाद उद्भूत हुआ । प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी ने संविदा करार के खंड 25 का अवलंब लिया और विवाद्यक/दावे को प्रबंध निदेशक, केन्द्रीय भण्डारण निगम, नई दिल्ली को निर्दिष्ट किया । अपीलार्थियों के प्रबंध निदेशक ने दावों (विवाद्यकों) की संवीक्षा की और यह पाया कि वे 'प्रत्याशित मामलों' के भीतर आते हैं और इसलिए उन्होंने कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया । अतएव, ठेकेदार (प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी) ने अधीनस्थ न्यायाधीश, त्रिचूर के समक्ष 1989 की माध्यस्थम् मूल वाद सं. 772 फाइल की । वाद को अधिनियम की धारा 20 के अधीन फाइल किया गया था । वाद में, अन्य बातों के साथ, वादपत्र में उल्लिखित विवाद्यकों के बारे में पक्षकारों के बीच विवाद्यकों पर न्यायनिर्णयन करने के लिए एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त करने की प्रार्थना की गई थी ।

3. अपीलार्थियों ने वादपत्र में किए गए कथनों से इनकार करते हुए लिखित कथन फाइल किया । अपीलार्थियों ने वाद खारिज किए जाने की प्रार्थना की । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने तारीख 11 जुलाई, 1996 के

निर्णय द्वारा एक मध्यस्थ की नियुक्ति की । इस निर्णय को इस न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में 1996 की सी. आर. पी. सं. 2003 में चुनौती दी गई । उक्त पुनरीक्षण में इस न्यायालय के समक्ष उद्भूत दो प्रश्नों पर विचार किया गया और उन पर विनिश्चय किया गया । प्रथम प्रश्न यह था कि क्या अधिनियम, 1940 की धारा 20 के अधीन फाइल वाद में माध्यस्थम् के विवाद्यकों को निर्दिष्ट करते हुए निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण कायम रखे जाने योग्य है ? इस न्यायालय का यह निष्कर्ष था कि पुनरीक्षण कायम रखे जाने योग्य है । द्वितीय प्रश्न माध्यस्थम् के कतिपय खंडों के निर्देश में वैधता और औचित्य से संबंधित था । इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर भी विचार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि चूंकि संविदा के अधीन नामोदिष्ट व्यक्ति या तो संविदा में यथाउपबंधित रूप से एक मध्यस्थ की नियुक्ति करने से इनकार कर सकते थे या अपने प्राधिकार में अधित्यक्त कर सकते थे, न्यायालय अन्तर्ग्रस्त विवाद्यकों का न्यायनिर्णयन करने के लिए एक मध्यस्थ की नियुक्ति करने की अधिकारिता रखता है । यह भी निष्कर्ष निकाला कि प्रश्न जहां कुछ विवाद्यक माध्यस्थम् योग्य हैं या नहीं वहां उस मामले में नियुक्त मध्यस्थ द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है । अभिलेखों से यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा 1996 की सी. आर. पी. सं. 2003 में पारित आदेश अंतिम हो गया था । इसके पश्चात्, दोनों पक्षकारों को नोटिस द्वारा माध्यस्थम् किया गया था । दोनों पक्षकारों ने मध्यस्थ के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए अपनी दलीलों को सिद्ध किया । मध्यस्थ द्वारा दोनों पक्षकारों की सुनवाई की गई । जब मामला मध्यस्थ के समक्ष लम्बित था तभी मूल ठेकेदार (प्रत्यर्थियों के हित-पूर्वाधिकारी) की मृत्यु हो गई थी । प्रत्यर्थी अतिरिक्त दावेदार के रूप में अभिवाचित किए गए । मध्यस्थ द्वारा एक पंचाट पारित किया गया और दोनों पक्षकारों को लिखित में नोटिस दिए जाने के पश्चात् उसने इसे अधिनियम, 1940 के उपबंधों के अधीन न्यायालय के समक्ष फाइल किया । पंचाट पारित करने के पश्चात्, मध्यस्थ को पंचाट में लिपिकीय और मुद्रण संबंधी त्रुटियों का पता चला । इसलिए, मध्यस्थ ने अधिनियम, 1940 की धारा 13(घ) के अधीन शक्तियों का अवलंब लेते हुए मूल पंचाट में आवश्यक सुधार किया ।

4. पंचाट से असंतुष्ट होकर, अपीलार्थियों ने अधिनियम, 1940 की धारा 30 के अधीन अधीनस्थ न्यायाधीश, त्रिचूर के न्यायालय के समक्ष एक माध्यस्थम् 2001 की मूल याचिका सं. 27 फाइल की । इसमें कतिपय

आधारों पर पंचाट अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई । प्रत्यर्थियों ने पंचाट के विरुद्ध अपीलार्थियों द्वारा उद्भूत अभिकथनों से इनकार करते हुए कार्यवाहियों में प्रति-शपथपत्र फाइल किया । प्रत्यर्थियों ने पंचाट के आधार पर निर्णय प्राप्त करने के लिए माध्यस्थम् 1989 की मूल वाद सं. 772 में 2000 की आई. ए. सं. 926 फाइल की । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने दोनों पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् अपीलार्थियों द्वारा फाइल याचिका खारिज कर दी और वाद में एक डिक्री पारित की । माध्यस्थम् मूल याचिका में पारित उस आदेश को इस अपील में चुनौती दी गई है ।

5. अब हम दिए गए तथ्यों पर विचार करेंगे । अभिवचनों से यह प्रतीत होता है कि प्रमुख विवाद्यक निम्नलिखित मामलों से संबंधित हैं । अपीलार्थियों ने यह दलील दी है कि विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश और मध्यस्थ को सर्वप्रथम यह विनिश्चित करना चाहिए था कि क्या मध्यस्थ को निर्दिष्ट सम्पूर्ण विवाद्यक माध्यस्थम् योग्य था या नहीं । इस दलील को अपीलार्थी द्वारा इस आधार पर उद्भूत किया गया था कि संविदा के खंड 2, 3, 5, 8-क, 10-क, 10-ग और 12 प्रत्याशित मामले खंड थे और इसलिए यह माध्यस्थम् योग्य नहीं थे । प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि संविदा में वे खंड 'प्रत्याशित मामलों' के संवर्ग के अधीन नहीं आते हैं और मध्यस्थ ने सही ही उन मामलों पर विचार किया । पंचाट अपास्त करने के लिए उद्भूत एक अन्य दलील यह थी कि मध्यस्थ ने बिना किसी अधिकारिता के अत्यधिक रकम अधिनिर्णीत की है और उस तथ्य को विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा नोटिस में नहीं लिया गया । पंचाट को आंख मूंदकर स्वीकार करने में न्यायालय की ओर से की गई एक गंभीर त्रुटि थी । अपीलार्थियों ने यह भी दलील दी कि मध्यस्थ ने उन कतिपय मुद्दों का लोप करते हुए गंभीर अवचार कारित किया है जो विचार के लिए उद्भूत की गई थी । मध्यस्थ द्वारा प्रत्यर्थियों को अधिनिर्णीत अधिकतर रकम उनके द्वारा वैधतः संदाय योग्य नहीं थी । ब्याज का पंचाट भी विधि के अनुसरण में नहीं था । अपीलार्थियों ने इन दलीलों पर पंचाट को निचले न्यायालय के समक्ष चुनौती दी और उसे अपास्त किए जाने का दावा किया । प्रत्यर्थियों ने पंचाट का समर्थन किया । उन्होंने इस अपील में प्रति-आक्षेप फाइल किया, इस तथ्य से व्यथित होकर कि निचले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री पंचाट के अनुसरण में नहीं है । इसलिए, प्रत्यर्थियों ने डिक्री में संशोधन करने की प्रार्थना की ताकि इसे उपयुक्त तौर पर पंचाट की सहमति योग्य बनाया जा सके ।

6. अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल और प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल को विस्तारपूर्वक सुना गया । अभिलेख पर उपलब्ध आक्षेपित पंचाट और दस्तावेजों का परिशीलन किया गया ।

7. अभिवचनों और तर्कों के आधार पर अपील में अवधारण के लिए उद्भूत बिन्दुओं को निम्नलिखित रूप में संक्षिप्त किया जा सकता है :–

(i) क्या संविदा में अन्तर्विष्ट 'प्रत्याशित मामलों' पर विचार करने में मध्यस्थ द्वारा विधिक त्रुटि कारित की गई है ?

(ii) क्या मध्यस्थ अधिनिर्णीत रकमों के लिए ब्याज मंजूर करने के लिए वैधतः सही है ?

(iii) क्या निचले न्यायालय ने पंचाट अपास्त करने के लिए अपीलार्थियों के दावों को नामंजूर करने में वैधतः गलत था ?

(iv) क्या निचले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री में संशोधन करने के लिए प्रत्यर्थियों द्वारा उद्भूत अभिवाक् वैधतः मंजूर किए जाने योग्य है ?

मुद्दा सं. 1

8. अपील ज्ञापन में पंचाट के विरुद्ध गंभीर चुनौती मध्यस्थ की ओर से निर्देश के क्षेत्र के परे मामलों को विनिश्चित करने में अभिकथित अवचार के बारे में है । स्पष्टतः यह कथित है कि उस मामले में चुनौती दी गई है जिनमें मध्यस्थ द्वारा माध्यस्थम् से प्रत्याशित विचार किया जाना अपेक्षित था । अपीलार्थियों ने यह निवेदन किया कि यह परिणाम न केवल अवैधता कारित करता है अपितु यह उनके प्रति गंभीरतः प्रतिकूल भी है ।

9. यह सुस्थिर है कि जब पंचाट वैध माध्यस्थम् करार के आधार पर विधिमान्य निर्देश के परिणामस्वरूप होता है तो मध्यस्थ का पंचाट पक्षकारों पर आबद्धकारी होता है । ऐसे पंचाट की विधिमान्यता के लिए यह आवश्यक नहीं होता है कि पक्षकारों को मध्यस्थ द्वारा दिए गए ऐसे विनिश्चय से अवश्य ही सहमत होना चाहिए । **प्रकाश चन्द खुराना आदि** बनाम **हरनाम सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर विचार किया कि क्या एक माध्यस्थम् पंचाट के अधीन पारित डिक्री सहमति डिक्री के समान हो सकती है । इन दोनों के बीच

---

[1] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 2065.

भिन्नता को स्वच्छतापूर्वक निम्नलिखित स्पष्टीकृत किया गया :–

> "..... इसलिए, हम इस मत के लिए कोई उचित कारण नहीं पाते हैं कि अधिनिर्णीत डिक्री को सहमति डिक्री के रूप में समझा जाना चाहिए । मध्यस्थ का पंचाट इस तथ्य के कारण स्वयं प्रभावी नहीं होता है कि पक्षकार इससे सहमत थे । पंचाट स्वयं के आधार पर विधिमान्य होता है, पक्षकारों के विनिश्चय की स्वतंत्रता इसके अध्यधीन नहीं होता है । दूसरी ओर, समझौता डिक्री की विधिमान्यता पक्षकारों की सहमति पर निर्भर करता है . . . . ।"

यह समान रूप से सुस्थिर है कि मध्यस्थ साक्ष्य की गुणवत्ता और मात्रा का एकमात्र निर्णायक होता है । न्यायालय, मध्यस्थ द्वारा पारित निर्णय पर अपील में विचार नहीं कर सकती है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **नगर निगम, दिल्ली** बनाम **मैसर्स जगन नाथ, अशोक कुमार और एक अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया । इसमें निम्नलिखित विधि की प्रतिपादना की गई है :–

> "..... हमारी राय में, मध्यस्थ साक्ष्य की गुणवत्ता के साथ ही मात्रा का न्यायनिर्णयन करने के लिए एकमात्र निर्णायक होता है और मध्यस्थ अपने समक्ष साक्ष्य का स्वयं निर्णायक होने के नाते यह न्यायालय उस कार्य को नहीं कर सकता है । यह संभाव्य हो सकता है कि उसी साक्ष्य पर न्यायालय मध्यस्थ द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के अलावा भिन्न निष्कर्ष निकाल सकता है किन्तु हमारे मत में मात्र यही एक मध्यस्थ के पंचाट को अपास्त करने का कोई आधार नहीं हो सकता है ।"

एक अन्य **इंडियन आयल कार्पोरेशन लि.** बनाम **इंडियन कार्बन लि.**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय में निम्नलिखित विधिक कथन किए गए हैं :–

> "..... जब माध्यस्थम् खंड मध्यस्थ से सकारण (पंचाट) देने की अपेक्षा करता है और मध्यस्थ पंचाट में अपने कारण नहीं देता है तो कारणों की पर्याप्तता प्रत्येक विशिष्ट मामले के तथ्यों पर निर्भर करती है । न्यायालय पंचाट और कारणों के पुनर्विलोकन पर अपील

---

[1] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 2316.

[2] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1340.

की सुनवाई नहीं कर सकती है । न्यायालय पंचाट को मात्र तभी अपास्त कर सकता है यदि पंचाट से यह प्रकट होता है कि निष्कर्षों के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है अथवा यदि पंचाट किसी ऐसी विधिक प्रतिपादना पर आधारित है जो त्रुटिपूर्ण है ।"

प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **महाराष्ट्र राज्य विद्युत परिषद्** बनाम **स्टेरिलाईट इंडस्ट्रीज (इंडिया) और एक अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को उद्धृत करते हुए यह दलील दी है कि मध्यस्थ का पंचाट, तथ्य और विधि दोनों के आधार पर अंतिम होता है, कि उसके अधिमत से कोई अपील नहीं हो सकती है, कि न्यायालय उसके पंचाट तथा उसके न्यायनिर्णयन में किसी भूल को सही करने के लिए पुनर्विलोकन नहीं कर सकता है, जब तक कि पंचाट की वैधता पर आक्षेप इसके आमुख पर ही प्रकट नहीं होता है । विनिश्चय के पैराग्राफ 9 से 12 में इन सिद्धांतों पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पुनः दोहराया गया है । पुनः माननीय उच्चतम न्यायालय ने **पी. आर. शाह, शेयरर्स और स्टाक ब्रोकर्स प्रा. लि.** बनाम **बी. एच. एच. सिक्यूरिटीज प्रा. लि. और अन्य**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय एक माध्यस्थम् अधिकरण के पंचाट के साक्ष्य का पुनः अवधारण या पुनः विवेचन करने के लिए अपील की सुनवाई नहीं कर सकता है । उपर्युक्त सिद्धांतों के प्रकाश में, हम विवादियों द्वारा उद्भूत दलीलों की परीक्षा करेंगे ।

10. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि संविदा के खंड 2, 3, 5, 8-क, 10-ग और 12 अपवर्जित मामले खंड हैं । यह निवेदन किया कि मध्यस्थ द्वारा माध्यस्थम् के निर्देश के क्षेत्र के परे इसमें के विवाद्यकों का विनिश्चय करना अवैध होगा । यह तथ्यों पर 'प्रत्याशित मामलों' से संबंधित विधि के क्षेत्र को समझने में विपरीत हो सकता है ।

11. माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारतीय खाद्य निगम बनाम श्रीकंठ ट्रांसपोर्ट वाले मामले में पैराग्राफ 3 में 'प्रत्याशित मामलों' को निम्नलिखित शब्दों में वर्णित किया है :–

"सुस्पष्टतः, 'प्रत्याशित मामलों' जैसा कि पक्षकारों में सहमति है, में आगे कोई न्यायनिर्णयन अपेक्षित नहीं होता है क्योंकि स्वयं

---

[1] (2001) 8 एस. सी. सी. 482.

[2] (2012) 1 एस. सी. सी. 594.

करार में नामित न्यायनिर्णायक का उपबंध होता है – उसकी सहमति में, सुस्पष्टतः पक्षकारों द्वारा संविदा के निबंधनों में सुस्पष्टतः स्वीकृति के कारण उपधारणा की जाती है और जहां न्यायालय माध्यस्थम् के निर्देश के लिए आवेदन को ग्रहण करने की अपनी अधिकारिता का अभाव पाता है जहां तक कि उससे उद्भूत विवाद्यकों का संबंध है और प्रत्याशित मामलों की परिधि के भीतर उद्भूत दावों की दशा में संगत मत अपनाया जाता है वहां किसी मध्यस्थ की अधिकारिता की उपधारणा का प्रश्न या तो न्यायालय की सहमति से या उसके हस्तक्षेप के बिना उद्भूत नहीं होता है । पक्षकार स्वयं इन मामलों के बारे में विशिष्ट अधिकारी द्वारा उसके न्यायनिर्णयन का विनिश्चय लेते हैं, तथापि, यह अपवाद तथ्य के प्रश्न होते हैं और संविदा दस्तावेज में प्रायिक रूप से और करार के भाग प्ररूप में उल्लिखित होते हैं और इस प्रकार, इन विनिर्दिष्ट मामलों के न्यायनिर्णयन के बारे में और प्रत्याशित मामलों के रूप में संविदा में निबंधित होने के नाते कोई संदिग्धता नहीं होती है ।"

12. इस मामले के तथ्यों पर विचार करते हैं, हमारे प्रयोजन के लिए निम्नलिखित पहलू सुसंगत हैं । पक्षकारों के बीच संविदा करार में संविदा की शर्तों को उपदर्शित करते हुए एक अध्याय उपबंधित है । इसका खंड 25, पारस्परिक करार द्वारा किए गए सुधार के पश्चात् इस प्रकार है :–

"**खंड 25.** – सिवाय, जहां संविदा में अन्यथा उपबंधित हैं, विनिर्देशों, परिकल्पनाओं, नक्शाओं और इसमें पूर्व उल्लिखित अनुदेशों के अर्थान्वयन के बारे में और कारीगरी की गुणवत्ता और कार्य में प्रयुक्त सामग्रियों के बारे में उद्भूत सभी प्रश्नों और विवाद्यकों या किसी अन्य प्रश्न, दावा, अधिकार, मामला या चीज, जो भी हो, किसी भी तरीके से उद्भूत हुआ हो या संविदा, परिकल्पनाओं, नक्शों, विनिर्देशों, प्राक्कलनों, अनुदेश, आदेशों से संबंधित हो या इन शर्तों या कार्य से संबंधित अन्यथा या उसके निष्पादन या निष्पादन में असफल रहने पर चाहे वे कार्य उन्नति पर रहने के दौरान उद्भूत हुए हों या उसकी समाप्ति या परित्याग के पश्चात् उद्भूत हुए हों, प्रबंध निदेशक, केन्द्रीय भण्डारण निगम द्वारा विवाद्यक के समय पर नियुक्त व्यक्ति के एकमात्र मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाएगा या यदि कोई प्रबंध निदेशक, केन्द्रीय भण्डारण निगम नहीं है तो ऐसी नियुक्ति के समय पर उक्त केन्द्रीय भण्डारण निगम के प्रशासनिक प्रमुख द्वारा

नियुक्त एकमात्र मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाएगा । ऐसे मध्यस्थ की ऐसी नियुक्ति पर कोई आक्षेप नहीं किया जाएगा क्योंकि वह एक निगम कर्मचारी के रूप में नियुक्त होता है, कि वह उन मामलों पर विचार करता है जो संविदा से संबंधित होता है और कि अपने कर्तव्यों के दौरान निगम कर्मचारी के रूप में वह विवादित या मतभेद वाले सभी मामले या किसी भी मामले पर अपना मत व्यक्त कर सकता है । मध्यस्थ का, जिसे मूल रूप से मामला निर्दिष्ट किया जाता है, स्थानांतरित होने या अपना पद खाली करने या किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ होने से ऐसे स्थानांतरण, पद खाली करने या कार्य में असमर्थ होने के समय पर यथापूर्वोक्त ऐसा प्रबंध निदेशक या प्रशासनिक प्रमुख संविदा के निबंधनों के अनुसार मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करेगा । ऐसा व्यक्ति उस प्रक्रम से निर्देश में कार्यवाही करने का हकदार होगा जिस समय पर उसके पूर्वाधिकारी द्वारा छोड़ा गया था । इस संविदा के निबंधनों में यह भी है कि उपर्युक्त रूप से ऐसे प्रबंध निदेशक या प्रशासनिक प्रमुख केन्द्रीय भण्डारण निगम द्वारा नियुक्त व्यक्ति के अलावा कोई अन्य व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में कार्य नहीं करेगा और यदि किसी कारण से यह संभाव्य नहीं है कि मामले को किसी भी प्रकार से मध्यस्थ को निर्दिष्ट नहीं किया जाएगा । मध्यस्थ पंचाट के लिए कारण भी देगा ।

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के पूर्वोक्त उपबंध अथवा उसके अधिनियमन के लिए किसी कानूनी उपांतरण और उसके अधीन बनाए गए नियम और तत्समय प्रवृत्त विधि इस खंड के अधीन माध्यस्थम् कार्यवाहियों में लागू होंगे ।

संविदा के निबंधनों में यह भी है कि माध्यस्थम् का अवलंब लेने वाले पक्षकार इस खंड के साथ प्रत्येक ऐसे विवाद्यक के संबंध में दावाकृत रकम या रकमों के अधीन माध्यस्थम् को विवाद्यक या विवाद्यकों को निर्दिष्ट करेंगे ।

संविदा के निबंधनों में यह भी है कि यदि ठेकेदार (ठेकेदारों) निगम से परिसीमा अवधि 90 दिन के भीतर लिखित में किसी दावे (दावों) के संबंध में माध्यस्थम् के लिए कोई मांग करता है/नहीं करता है कि संदाय के लिए बिल तैयार है तो ठेकेदार (ठेकेदारों) का दावा त्यक्त होना समझा जाएगा और पूर्णरूपेण वर्जित समझा जाएगा और

निगम इन दावों के संबंध में संविदा के अधीन अपने सभी दायित्वों से उन्मोचित और अवमुक्त हो जाएगा ।

मध्यस्थ (मध्यस्थों) पक्षकारों की सहमति से पंचाट करने और प्रकाशित करने के लिए समय नियत कर सकता है ।"

13. प्रत्यर्थियों की शिकायत यह है कि अपीलार्थियों ने माध्यस्थम् के माध्यम से विवाद्यक हल करने के लिए कदम उठाने से इनकार कर दिया था और इसलिए, वे एक मध्यस्थ की नियुक्ति कराने के लिए न्यायालय में आने के लिए बाध्य हुए । तथापि, मध्यस्थ की नियुक्ति और पंचाट पारित करने के लिए मामले पहले से ही निष्कर्षित है । अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने इस न्यायालय का ध्यान उपर्युक्त उल्लिखित खंडों की ओर आकर्षित किया है जिन्हें प्रत्याशित मामले खंड कहा गया है । संविदा करार का खंड 2 विलम्ब के लिए प्रतिकर के बारे में है । यह अनुध्यात करता है कि टेंडर में यथाप्रविष्ट कार्य करने के लिए मंजूर समय का ठेकेदार द्वारा कठोरतः पालन करना चाहिए । यह भी कथन करता है कि ठेकेदार अपीलार्थियों को प्रतिकर संदाय करेगा और उसकी मात्रा उस प्रबंध अभियन्ता द्वारा विनिश्चित किया जाएगा जिसका लिखित में विनिश्चय अंतिम समझा जाएगा । खंड 3 ठेकेदार द्वारा विलम्ब कारित करने या संविदा के निष्पादन के लिए आन्तरिक कारीगरी नियोजित करने का निरीक्षण करने के लिए आशयित है । यह भी कि भारसाधक अभियन्ता को इसमें परिगणित मामलों के संबंध में विनिश्चय करने की शक्ति दी गई है । संविदा का खंड 5 कतिपय आधारों पर कार्य समाप्ति के लिए समय विस्तार से संबंधित है । अपीलार्थियों के भारसाधक अभियन्ता को ऐसे मामलों में विनिश्चय लेने की शक्ति दी गई थी । खंड 8-क अपीलार्थियों द्वारा अभिलिखित मापन के बारे में आक्षेप फाइल करने के लिए ठेकेदार के अधिकार से संबंधित है । भारसाधक अभियन्ता और ठेकेदार द्वारा लिए गए विनिश्चय में उसे विवाद्यक के बारे में कोई अधिकार नहीं होगा । खंड 10-ग सामग्रियों और/या श्रमिकों की मजदूरियों के मूल्य में वृद्धि से संबंधित है । प्रबन्धक अभियन्ता मामले में विनिश्चय लेने के लिए नामित प्राधिकारी है और उसका विनिश्चय अंतिम होगा और ठेकेदार पर आबद्धकर होगा । खंड 12 विनिर्देशों और परिकल्पनाओं में उपांतरण से संबंधित है । इस खंड में सुधार स्लिप द्वारा पक्षकारों की पारस्परिक सहमति से सुधार किया गया है और यह भारसाधक अभियन्ता को इसमें कथित मामलों के संबंध में अंतिम विनिश्चय लेने के लिए सशक्त करता है ।

14. अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह जोरदार तर्क दिया कि मध्यस्थ ने उपर्युक्त कथित खंडों के क्षेत्र और प्रभाव पर विचार किए बिना मामलों में विनिश्चय किया जिन्हें वस्तुतः माध्यस्थम् के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया था ।

15. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि ये खंड वैधतः 'प्रत्याशित मामलों' के खंड के रूप में नहीं माने जा सकते हैं । उनके अनुसार ये सभी मामले माध्यस्थम् को प्रस्तुत किए गए थे । प्रत्यर्थियों का निवेदन यह है कि अपीलार्थियों ने किसी भी तात्विक समय पर प्रत्याशित मामलों के मुद्दे को नहीं उठाया है । इस न्यायालय का ध्यान मध्यस्थ के समक्ष प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल दावा कथन, अपीलार्थियों द्वारा फाइल प्रति कथन और प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल प्रत्युत्तर की ओर दिलाया गया है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि मध्यस्थ ने सम्पूर्ण विवाद्यकों को संज्ञान में लिया और वह ऐसा करने के लिए सक्षम था ।

16. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि संविदा में यह उपबंध करने वाले कतिपय खंडों के मात्र मौजूदगी से कि विशिष्ट मामले पर नामनिर्दिष्ट प्राधिकारी का विनिश्चय अंतिम हो जाएगा और यह स्वयमेव ही इस संबंध में उद्भूत दावों से दावेदारों के 'प्रत्याशित मामलों' की रिष्टि के भीतर और/या वर्जन के भीतर ऐसे मामलों को लाने के लिए आबद्धकर नहीं होगा । प्रत्यर्थियों की विनिर्दिष्ट दलील यह है कि उन पहलुओं पर ऐसे विनिश्चय का अस्तित्व प्राथमिक होता है और यह प्रत्याशित मामलों के खंडों का अवलंब लेने के लिए पूर्व-अपेक्षित आवश्यकता है । प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह है कि प्राधिकारी, जो उपखंडों द्वारा नामनिर्दिष्ट होना कथित है, ने उन मामलों से संबंधित कोई विनिश्चय नहीं लिया है । प्रत्यर्थियों की यह भी दलील है कि ऐसे विनिश्चय जिसे नामित प्राधिकारी द्वारा लिया गया है, पर अपना पक्षकथन रखने के लिए दावेदार को युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् विचार किया जाना चाहिए था । 'प्रत्याशित मामलों' के संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा न्यायोचित और ऋजुतः कार्य करना चाहिए । ऐसे मामलों में विनिश्चय प्रभावित दावेदार को नोटिस देने के पश्चात् और उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् किया जाना चाहिए । प्रत्यर्थियों के अनुसार इस मामले में, इन मामलों में से किसी के भी संबंध में ऐसा कुछ नहीं किया गया ।

17. इस न्यायालय का ध्यान मध्यस्थ द्वारा पारित पंचाट की ओर

दिलाया गया । दोनों पक्षकारों द्वारा उद्भूत दलीलों का दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के सविस्तार कथन, कथित दावे और प्रतिदावे के साथ प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर मध्यस्थ द्वारा विस्तारपूर्वक विचार किया गया था । यह प्रतीत होता है कि प्रदर्श सी-1 से प्रदर्श सी-85 तक दावेदारों (इसमें के प्रत्यर्थी) की ओर से विचारित किए गए थे । प्रदर्श आर-1 से प्रदर्श आर-45 प्रत्यर्थियों द्वारा (इसमें के अपीलार्थी) द्वारा प्रस्तुत किए गए थे । पंचाट के परिशीलन से यह सुस्पष्ट होता है कि मध्यस्थ ने उद्भूत विवाद्यकों पर मनमाने तरीके से विचार किया था और न्यायालय द्वारा माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया गया था । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया है कि यद्यपि अपीलार्थियों द्वारा अवलंबित कतिपय खंडों को उन पर समुचित विनिश्चय लिए जाने के लिए नामित अधिकारी के प्राधिकार को दर्शित किया गया था, कि अधिकार का समुचित तौर पर प्रयोग नहीं किया गया था । इसलिए, मध्यस्थ के लिए तथाकथित 'प्रत्याशित मामलों' पर विचार करने में कोई अड़चन नहीं था ।

18. इस प्रतिपादना का सहारा लेते हुए **भारत संचार निगम लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **मोटोरोला इंडिया प्रा. लि.**[1] वाले मामले का अवलंब लिया गया । इसमें उद्भूत मूलभूत प्रश्नों में से एक प्रश्न यह था कि क्या टेंडर दस्तावेज के खंड 16.2 के अधीन परिनिर्धारित क्षतिपूर्ति का उद्ग्रहण संविदा के खंड 20.1 के निबंधनों में 'प्रत्याशित मामलों' में आता है, ताकि उसे माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट नहीं किया जा सके । खंड 16.2 अन्य बातों के साथ-साथ परिनिर्धारित क्षतिपूर्तियों की मात्रा निर्धारित करता है इसमें यह कथित है कि परिनिर्धारित क्षतिपूर्तियों की मात्रा निर्धारित की जाएगी और क्रेता द्वारा उद्ग्रहण अंतिम होगा और यह आपूर्तिकर्ता द्वारा चुनौती योग्य नहीं होगा । खंड 20.1 माध्यस्थम् से प्रत्याशित मामलों पर विचार करता है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने कतिपय पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि इस मामले में विनिश्चित किए जाने वाला प्रश्न यह था कि क्या परिनिर्धारित क्षतिपूर्तियों का संदाय करने के लिए प्रत्यर्थी का दायित्व और प्रत्यर्थी से उसे संग्रहण करने के लिए अपीलार्थियों का हक संविदा के साधारण शर्तों के खंड 20.1 के प्रयोजन के लिए एक प्रत्याशित मामला है । संविदा के निबंधनों और अन्य सामग्रियों का विश्लेषण करने के पश्चात् निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 357.

"खंड 16.2 एक प्रत्याशित मामले के रूप में नहीं समझा जा सकता है इस तथ्य के कारण कि यह किसी प्रश्न, विवाद्यक या मतभेद पर विनिश्चय करने के लिए कोई न्यायनिर्णयन प्रक्रिया का उपबंध नहीं करता है जो क्षतिपूर्तियों की मात्रा निर्धारित करने के प्रक्रम पर पूर्ववर्ती शर्त होता है ।"

पैराग्राफ 13 में यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि :–

"..... किसी माध्यस्थम् करार का मूल सार तत्व विवाद्यकों के संबंध में सौहार्दपूर्ण तरीके से न्यायनिर्णयन करना होता है जहां पक्षकारों के बीच विवाद्यक होता है । खंड 16.2 में ऐसे सीमित शब्दों का निर्माण किसी भी प्रकार से नहीं होने पर पक्षकारों के बीच समझौते का आधार ही नष्ट हो जाता है .....।"

कर्नाटक राज्य बनाम **श्री रामेश्वर राईस मिल्स**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने **भारत संचार लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **मोटोरोला इंडिया प्रा. लि.** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह भी मत व्यक्त किया कि यद्यपि यह खंड, अधिकारी को संविदा भंग के प्रश्न पर विनिश्चय करने के साथ ही क्षतिपूर्तियों की मात्रा को निर्धारित करने के लिए सशक्त करता है, अधिकारी द्वारा संविदा भंग के बारे में न्यायनिर्णयन को विधि के अधीन कायम नहीं रखा जा सकता है क्योंकि करार का एक पक्षकार स्वयं अपने मामले में मध्यस्थ नहीं हो सकता है ।

19. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **जे. जी. इंजीनियर्स प्रा. लि.** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[2] वाले मामले में पुनः प्रत्याशित मामलों के क्षेत्र और प्रभाव के बारे में विचार किया और निर्णय के पैराग्राफ 19 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"वस्तुतः, यह प्रश्न कि क्या अन्य पक्षकार ने संविदा भंग की है, पक्षकार द्वारा अभिकथित भंग का विनिश्चय नहीं किया जा सकता है । संविदा में यह उपबंध नहीं किया जा सकता है कि एक पक्षकार यह विनिश्चय करने के लिए मध्यस्थ होगा कि क्या उसने संविदा भंग

---

[1] (1987) 2 एस. सी. सी. 160.

[2] (2011) 5 एस. सी. सी. 758.

की है या अन्य पक्षकार ने संविदा भंग की है । उस प्रश्न का विनिश्चय मात्र एक न्यायनिर्णायक फोरम अर्थात् न्यायालय या माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा ही किया जा सकता है ।"

20. इसलिए, संविदा के खंडों में "प्रत्याशित मामलें" से संबंधित विधि की निम्नलिखित निबंधनों में संवीक्षा की जा सकती है । संविदा के खंड में "प्रत्याशित मामलें" की न्यायनिर्णयन करने की अपेक्षा नहीं है क्योंकि पक्षकार पहले से ही नामित न्यायनिर्णायक के माध्यम से विवाद्यकों का हल करने के लिए सहमत थे । "प्रत्याशित मामलें" के रूप में खंड गठित किए गए हैं, जो न्यायनिर्णयन की प्रक्रिया के लिए उपबंध करते हैं । यह याद रखना चाहिए कि किसी माध्यस्थम् करार का सही सार विवाद्यकों/मतभेदों की दशा में मामले में मध्यस्थ करना है । इसलिए, संविदा में ऐसे खंड समझौते के आधार को नष्ट करने के लिए "प्रत्याशित मामलें" के रूप में वस्तुतः हस्तक्षेप नहीं करते हैं । नामित न्यायनिर्णायक को विधिक अपेक्षाओं और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करने के पश्चात् मामले में विनिश्चय करना चाहिए ।

21. प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि अपीलार्थियों द्वारा अवलंबित खंड "प्रत्याशित मामलें" गठित नहीं करते हैं । यह भी दलील दी कि मध्यस्थ के समक्ष दावेदारों द्वारा प्रत्युत्तर फाइल करने के पश्चात् भी अमध्यस्थता के पहलू या प्रत्याशित मामलों का प्रश्न अपीलार्थियों द्वारा मध्यस्थ के समक्ष उद्भूत नहीं किया गया था । अपीलार्थियों द्वारा मध्यस्थ के समक्ष इस प्रश्न पर विनिश्चय करने के लिए निवेदन करते हुए कोई पृथक् आवेदन फाइल नहीं किया गया था कि क्या उक्त खंड माध्यस्थम् के अधीन हैं या नहीं । अतएव, इस समय बिन्दु पर प्रत्यर्थियों ने यह दलील दी कि ऐसे अभिवाक् उद्भूत करते हुए उनकी सुनवाई नहीं की जा सकती है ।

22. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों से यह प्रतीत होता है कि कतिपय खंडों की अमध्यस्थता का प्रश्न इस अपील में प्रथम बार उद्भूत किया गया था । तथापि, इस बात पर विचार करना ठीक और समुचित होगा कि क्या अपीलार्थी कम-से-कम इस प्रक्रम पर ऐसे अभिवाक् को उद्भूत करने के हकदार हैं ।

23. आक्षेपित पंचाट का ध्यानपूर्वक परिशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि मध्यस्थ ने पक्षकारों द्वारा उद्भूत दावों और प्रतिदावों पर विस्तारपूर्वक विचार किया था । यह प्रतीत होता है कि विचार के लिए आठ

दावों को उद्भूत किया गया था । यह प्रकट होता है कि अपीलार्थियों ने मध्यस्थ के समक्ष इन आठों दावों की अमध्यस्थता के बारे में कोई आक्षेप उद्भूत नहीं किया था । दावा सं. 1 अंतिम बिल (प्रदर्श आर-2) के अनुसार अतिशेष रकम के संदाय से संबंधित है । मध्यस्थ ने प्रत्यर्थियों को 21,057/- रुपए अधिनिर्णीत किया, यह निष्कर्ष निकालते हुए कि संकर्म लेखा अनुभाग (डब्ल्यू. ए. अनुभाग) द्वारा सिफारिश 21,057/- रुपए की वसूली समुचित नहीं थी । इस तथ्यात्मक निष्कर्ष को इस कार्यवाही में चुनौती नहीं दी जा सकती है ।

24. दावा सं. 2 श्रमिक प्रभारों, स्टील मदों आदि के खर्चों में बढ़ोतरी के लिए बकाए प्रतिकर से संबंधित है । करार में सुसंगत खंड 10-ग है । मध्यस्थ ने दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत तात्विक दस्तावेजों पर विचार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी/दावेदार 13,62,175/- रुपए अपीलार्थियों से पाने के हकदार हैं । इस निष्कर्ष के लिए विनिर्दिष्ट कारण कथित किए गए थे । इस निष्कर्ष के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था कि संविदा करार के खंड 10-ग में यथाउपबंधित प्रबंधक अभियन्ता या भारसाधक अभियन्ता समुचित तौर पर इस मामले का न्यायनिर्णयन कर सकता था । प्रत्याशित मामलों के बारे में आबद्धकर पूर्व निर्णयों से प्रकट होने वाले सिद्धांत जब इस मामले में लागू किए जाते हैं तो यह प्रतीत होता है कि यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं है कि प्राधिकृत अधिकारी ने विधिक आवश्यकताओं के अनुसार अनुपालन करते हुए समुचित विनिश्चय ले सकता था । इसलिए, यह खंड प्रत्याशित मामलों के अधीन नहीं आता है ।

25. दावा सं. 3 उस अभिकथित रकम की वापसी से संबंधित है जिसे अपीलार्थियों द्वारा समय विस्तार के अभिवाक् पर प्रत्यर्थियों के बिलों से रोक लिया गया था । मध्यस्थ ने मामले पर विचार करने के पश्चात् यह पाया कि 56,000/- रुपए वस्तुत: प्रत्यर्थियों के बिलों से वसूल किया गया था जैसाकि बिल प्रदर्श आर-2 से प्रतीत होता है । उसे वापस करने का आदेश दिया गया था । मध्यस्थ द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यह अपीलार्थी ही थे जिन्होंने कार्य पूरा नहीं करने के कारण संविदा भंग किया था और उन्हें कार्य पूरा करने के लिए 31 मई, 1986 से आगे समय-विस्तार मंजूर नहीं किया गया था । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **जे. जी. इंजीनियर्स प्रा. लि.** बनाम **भारत संघ और एक अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि

जिन्होंने कार्य पूरा नहीं करने के परिणामस्वरूप संविदा भंग की है उस मामले को मात्र विधिक तौर पर नियुक्त मध्यस्थ द्वारा ही विनिश्चित किया जा सकता है और इसे अपीलार्थियों द्वारा विनिश्चित नहीं किया जा सकता है । इसलिए, मध्यस्थ के विनिश्चय में कोई विधिक त्रुटि नहीं है ।

26. पंचाट से यह सुस्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थियों द्वारा उद्भूत दावा सं. 4, 5 और 8 को मध्यस्थ ने नामंजूर कर दिया था । प्रत्यर्थियों ने इस नामंजूरी को चुनौती नहीं दी है । मध्यस्थ द्वारा दावा सं. 6 को 18,20,000/- रुपए के कुल दावे के विरुद्ध मात्र 8,94,472/- रुपए तक ही मंजूर किया था । मध्यस्थ द्वारा रकम मंजूर करने के लिए संक्षिप्त और स्पष्ट रूप से कारण दिए गए हैं । इस दावे को उप-दावों में प्रकट किया गया है और इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है । जैसा कि पूर्व में उल्लिखित किया जा चुका है, इन निष्कर्षों के विरुद्ध अपील पर यह न्यायालय सुनवाई नहीं कर सकता है । इस मामले में यह भी कि संविदा द्वारा प्राधिकृत अधिकारी ने विधिक आवश्यकताओं का अनुपालन करते हुए गुणागुणों पर विनिश्चय नहीं किया था । इसलिए, अपीलार्थियों की यह दलील कि यह दावा भी माध्यस्थम् के क्षेत्र के परे हैं, कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं ।

27. उपर्युक्त चर्चा से, यह सुस्पष्ट होता है कि मध्यस्थ ने सही परिप्रेक्ष्य में मामले पर विचार किया था । उन्होंने प्रत्येक दावों को या तो मंजूर करने या नामंजूर करने के लिए विनिर्दिष्ट कारण दिए हैं । अपीलार्थियों की यह दलील कि मध्यस्थ ने उन मामलों का विनिश्चय करते हुए अपनी अधिकारिता के बाहर कार्य किया जो माध्यस्थम् के अधीन नहीं थे, पूर्णतया अस्वीकार्य है । अतएव, इस मुद्दे को भी अपीलार्थियों के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है ।

मुद्दा सं. II

28. अपीलार्थियों के ज्येष्ठ विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि मध्यस्थ ने अधिनिर्णीत रकम के लिए ब्याज मंजूर करने में गंभीर त्रुटि कारित की है । अपीलार्थियों के अनुसार, मध्यस्थ ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त नहीं था । इसलिए, पंचाट इस आधार पर ही अपास्त किए जाने योग्य है ।

29. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि अपीलार्थी ब्याज अधिनिर्णीत करने को चुनौती देने के लिए इस अपील में कोई आधार उद्भूत करने में असफल रहे । यह सत्य है कि अपील ज्ञापन में दिए गए

आधारों से मध्यस्थ द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत करने के विरुद्ध कोई चुनौती दर्शित नहीं होती है । अपीलार्थियों ने अतिरिक्त आधारों को जोड़ने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् ''सी. पी. सी.'' कहा गया है) के आदेश 41, नियम 2 और आदेश 6, नियम 17 और धारा 151 का अवलंब लेते हुए 2012 की आई. ए. सं. 2056 फाइल की है । अपील, तारीख 22 जुलाई, 2009 को प्रस्तुत की गई थी । 2012 की आई. ए. सं. 2056 को तारीख 14 अगस्त, 2012 को फाइल किया गया था । इस आवेदन में अपीलार्थियों ने अन्य बातों के साथ अन्य आधारों पर ब्याज अधिनिर्णीत करने की सत्यता को विवादित किया था । प्रत्यर्थियों ने संशोधित आवेदन का जोरदार विरोध करते हुए प्रति-शपथपत्र फाइल किया था । यह दलील दी कि अपीलार्थियों द्वारा संशोधन की ईप्सा करने के लिए अवलंबित उपबंध इस मामले में लागू नहीं होते हैं । प्रस्थापित संशोधन निश्चित तौर पर परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है । आगे अपीलार्थियों ने पंचाट के ब्याज भाग के बारे में चुनौती देने के लिए कोई न्यायालय शुल्क संदत्त नहीं किया है । प्रत्यर्थियों के गणना के अनुसार, ब्याज को 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर कतिपय रकमों के लिए तारीख 31 अक्तूबर, 1988 से और शेष अधिनिर्णीत रकमों के लिए तारीख 30 नवम्बर, 1999 से मंजूर किया गया था । यह भी दलील दी है कि अपीलार्थियों ने केरल न्यायालय शुल्क और वाद मूल्यांकन अधिनियम की अनुसूची-II के अनुच्छेद 4(ii) के अधीन मात्र 43,876/- रुपए के लिए ही न्यायालय शुल्क संदत्त किया है । न्यायालय शुल्क 1,05,758/- रुपए देय था जो मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क के प्रयोजन के लिए ब्याज की मात्रा पर गणना किया जाना था ? इस संबंध में, प्रत्यर्थियों द्वारा उद्भूत दलीलें वैधतः स्वीकार्य हैं । ब्याज पंचाट के विरुद्ध चुनौती अत्यधिक विलम्बित प्रक्रम पर दी गई है और यह भी कि यह समुचित न्यायालय शुल्क अदायगी के बिना फाइल की गई है । इसलिए, अपीलार्थियों को पंचाट के विरुद्ध इस दलील को उद्भूत करना मंजूर नहीं किया जा सकता है । अतएव, संशोधन के लिए आवेदन विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है । इसलिए, इसे खारिज किया जाता है ।

30. स्वीकृतत:, यह ऐसा मामला है जिसे ब्याज अधिनियम, 1978 आरम्भ होने के पश्चात् मध्यस्थ के समक्ष निर्दिष्ट किया गया था । ब्याज अधिनियम, 1839 (पुराना अधिनियम) के अधीन मध्यस्थ निर्देश के संबंध में ब्याज अधिनिर्णीत नहीं कर सकता था । **सचिव, उड़ीसा सरकार, सिंचाई**

विभाग और अन्य बनाम **जी. सी. राय**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय में, मध्यस्थ द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत करने के विधिक अधिकारों के बारे में प्रास्थिति स्पष्ट की गई है । उस विनिश्चय द्वारा इस मामले में अविभावी संविवाद स्पष्ट होता है । माननीय उच्चतम न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहां पक्षकारों के बीच करार ब्याज मंजूर करने को प्रतिषिद्ध नहीं करता है और जहां एक पक्षकार ब्याज का दावा करता है और उस विवाद्यक (मूल रकम या स्वतंत्र रूप से किए गए दावे के साथ) माध्यस्थम् को निर्दिष्ट किया जाता है तो वह वादकालीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति रखता है । इस कारण से ही ऐसे मामले में, यह उपधारणा की जानी चाहिए कि ब्याज, पक्षकारों के बीच करार के निबंधनों में विवक्षित था और इसलिए जब पक्षकार अपने सभी विवाद्यक मध्यस्थ को निर्दिष्ट करते हैं तो उसे ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति होगी । इसका अभिप्राय यह नहीं है कि मध्यस्थ को प्रत्येक मामले में, वादकालीन ब्याज आवश्यक रूप से अधिनिर्णीत करना चाहिए । यह मध्यस्थ के विवेकाधिकार में आता है कि वह न्याय के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में इस बारे में (ब्याज) विचार करें ।

31. **उड़ीसा राज्य** बनाम **बी. एन. अग्रवाल**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के विद्वान् तीन न्यायाधीशों ने **सचिव, उड़ीसा सरकार, सिंचाई विभाग और अन्य** बनाम **जी. सी. राय** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत के प्रकाश में इस प्रश्न पर पुनः विचार किया । निर्णय के पैराग्राफ 18 में निम्नलिखित विधि अधिकथित की गई है :–

> "पूर्वोक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए, अब ब्याज मंजूर करने के बारे में मध्यस्थ की अधिकारिता में कोई संदेह नहीं हो सकता है । सिद्धांत जो अब सुस्थिर होना अधिकथित किया जा सकता है, यह है कि मध्यस्थ को उन मामलों में पूर्व-निर्देश ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता है जो ब्याज अधिनियम, 1978 लागू होने के पश्चात् उद्भूत हुए हैं । उन मामलों के संबंध में जो ब्याज अधिनियम, 1978 के लागू होने के पूर्व अवधि से संबंधित हैं, किसी सारवान् विधि, संविदा या प्रथा के अभाव में, मध्यस्थ को ब्याज

---

[1] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 732.

[2] (1997) 2 एस. सी. सी. 469.

अधिनिर्णीत करने की कोई अधिकारिता नहीं होती है । उस अवधि के दौरान जिनमें माध्यस्थम् कार्यवाहियां लम्बित होती हैं, जी. सी. राय और हिन्दुस्तान कंस्ट्रक्शन लिमिटेड वाले मामलों में दिए गए विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए, मध्यस्थ को ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति होती है । मध्यस्थ को पश्चात्वर्ती-पंचाट अवधि के लिए ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति भी मौजूद होती है और इस पहलू पर भी इस निर्णय के पश्चात्वर्ती भाग में 1994 की सिविल अपील सं. 9234 के संबंध में चर्चा में विचार किया गया है ।"

32. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **राजस्थान राज्य और एक अन्य** बनाम **फेरो कंकरीट कंस्ट्रक्शन प्रा. लिमिटेड**[1] वाले मामले में मध्यस्थ द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता के प्रश्न पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि जहां संविदा में अभिव्यक्त वर्जन नहीं है और जहां ब्याज संदाय के लिए कोई उपबंध नहीं है तो वहां ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 3 पूर्व-वाद या पूर्व-निर्देश अवधि में लागू होगी और परिणामस्वरूप ब्याज देय होगा । उक्त विनिश्चय में, वादकालीन ब्याज मंजूर करने के लिए मध्यस्थ के अधिकार को भी मान्यता दी गई ।

33. अधिनियम, 1978 की धारा 29 ब्याज मंजूर करने की न्यायालय की शक्ति के बारे में है जहां पंचाट धन संदाय के लिए है । न्यायालय ऐसे दर पर डिक्री की तारीख से डिक्री में ब्याज मंजूर करने के लिए सशक्त है जैसा कि न्यायालय पंचाट द्वारा अधिनिर्णीत मूल रकम पर संदत्त करने के लिए युक्तियुक्त समझता है और डिक्री द्वारा पुष्टि करता है । इस मामले में, मध्यस्थ ने डिक्री की तारीख तक ही ब्याज मंजूर किया है । इसलिए, मध्यस्थ द्वारा या तो ब्याज मंजूर करने में या उस तरीके में जिसमें ब्याज मंजूर किया है, कोई अवैधता नहीं है । इस मुद्दे को भी अपीलार्थियों के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है ।

मुद्दा सं. III

34. उपर्युक्त चर्चा से, यह सुस्पष्ट होता है कि मध्यस्थ ने कोई अवचार कारित नहीं किया है जैसा कि अपीलार्थियों द्वारा अभिकथित किया गया है । अपीलार्थियों की यह दलील कि संविदा करार में उपर्युक्त उल्लिखित खंड माध्यस्थम् के क्षेत्र के परे है, कायम रखे जाने योग्य नहीं है । मध्यस्थ, पंचाट में विनिर्दिष्ट दर पर ब्याज पर विचार करने और उसे

---

[1] (2009) 12 एस. सी. सी. 1.

मंजूर करने के लिए वैधतः न्यायानुमत है । हम, पंचाट में कोई विधिक त्रुटि नहीं पाते हैं । परिणामतः, हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई कारण नहीं पाते हैं कि अधीनस्थ न्यायाधीश ने पंचाट अपास्त करने के लिए अपीलार्थियों के दावे को नामंजूर करने में कोई त्रुटि कारित की है । हमारा यह निष्कर्ष है कि पंचाट सभी प्रकार से निश्चित तौर पर न्यायोचित है और इसे अपास्त करने का कोई कारण नहीं है । यद्यपि, हम, अधीनस्थ न्यायाधीश के इस मत से सहमत हैं कि पंचाट अपास्त करने की याचिका वैधतः मंजूर किए जाने योग्य नहीं है, हम, यह निष्कर्ष निकालने के लिए निचले न्यायालय द्वारा कथित कारणों को अनुमोदित नहीं करते हैं । हमने उपर्युक्त निष्कर्ष निकालने के लिए नए सिरे से मामले पर विस्तारपूर्वक विचार किया है । तद्नुसार, यह मुद्दा विनिश्चित किया जाता है ।

मुद्दा सं. IV

35. इसमें विचार के लिए उद्भूत प्रश्नों में से एक प्रश्न यह है कि क्या इस मामले में प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल प्रति-आक्षेप वैधतः कायम रखे जाने योग्य है । अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रति-आक्षेप फाइल करने का अधिकार एक सारवान् अधिकार है और न कि प्रक्रियात्मक । अधिनियम, 1978 की धारा 41 न्यायालय की प्रक्रिया और शक्ति के बारे में है । अधिनियम, 1978 की धारा 41 का खंड (क) विचारण न्यायालय और अपील न्यायालय द्वारा अनुसरित प्रक्रिया विहित करता है । इन दोनों न्यायालयों द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अनुसरण में है । उक्त धारा का खंड (ख), अधिनियम, 1978 की अनुसूची II में आने वाले मामलों के संबंध में आदेशों को करने की उन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने के लिए न्यायालय को सशक्त करता है । धारा 41 का परन्तुक यह स्पष्ट करता है कि अन्तरिम आदेश पारित करने की खंड (ख) के अधीन साधारण शक्ति का प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जा सकता है जो कि मध्यस्थ में निहित किसी शक्ति के प्रतिकूल हो ।

36. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि चूंकि प्रति-आक्षेप कुछ नहीं अपितु एक अपील है, इसलिए वस्तुतः एक प्रति अपील एक अपील सभी गुण रखती है । अधिनियम, 1978 की धारा 41 मात्र यह विहित करती है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में विहित प्रक्रिया, अधिनियम, 1978 की धारा 39 की अपीलों में भी लागू होगी । चूंकि अधिनियम, 1978 की धारा 39 के अधीन प्रति-आक्षेप फाइल करने का

कोई अधिकार नहीं दिया गया है इसलिए इसे अधिनियम, 1978 की धारा 41 के साथ नहीं पढ़ा जा सकता है । इन दलीलों पर जोर देने के लिए **अधीक्षण अभियन्ता और अन्य** बनाम **बी. सुब्बा रेड्डी**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया गया । अपीलार्थियों द्वारा उद्भूत ये दलीलें कायम रखे जाने योग्य हैं । यदि अधिनियम, 1978 की धारा 17, 39, 41 का संयुक्त रूप से परिशीलन किया जाए तो यह दर्शित होगा कि प्रत्यर्थी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 के नियम 22 के उपबंधों के अधीन प्रति-आक्षेप उद्भूत नहीं कर सकते हैं ।

37. इस तर्क के उत्तर में, प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि इस मामले में फाइल प्रति-आक्षेप, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 22 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के निबंधनों में नहीं हैं । प्रत्यर्थियों के अनुसार, प्रति-आक्षेप स्वयं अधिनियम, 1978 की धारा 17 के अधीन उद्भूत किया गया है । अधिनियम, 1978 की धारा 17 इस प्रकार है :–

> "**पंचाट के निबंधनों में निर्णय** – जहां न्यायालय पंचाट विप्रेषित करने या पुनः विचार के लिए माध्यस्थम् में निर्दिष्ट मामलों में से कोई या पंचाट अपास्त करने के लिए कोई कारण नहीं पाता है, न्यायालय पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन करने का समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् या किए गए ऐसे आवेदन को नामंजूर करने के पश्चात्, पंचाट के अनुसरण में निर्णय उद्घोषित करने की कार्यवाही करेगा और इस प्रकार उद्घोषित निर्णय पर एक डिक्री पारित की जाएगी और ऐसी डिक्री के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी सिवाय इस आधार पर कि यह पंचाट के आधिक्य में है या अन्यथा उसके अनुसरण में नहीं है ।"

(रेखांकन जोर देने के लिए किया गया है)

38. अधिनियम, 1978 की धारा 39(1)(vi) लाभदायक है क्योंकि यह भी अपीलनीय आदेशों को परिगणित करता है, यह इस प्रकार है :–

> "**अपीलनीय आदेश** – (1) विधि द्वारा प्राधिकृत न्यायालय में न्यायालय की मूल डिक्रियों से पारित आदेश की अपील सुनवाई करने के लिए इस अधिनियम के अधीन पारित आदेशों (और किसी अन्य से

---

[1] (1999) 4 एस. सी. सी. 423.

नहीं) के अनुसरण में अपील की जाएगी –

एक आदेश –

(i) * * * * * * * * *;

(ii) * * * * * * * * *;

(iii) * * * * * * * * *;

(iv) * * * * * * * * *;

(v) * * * * * * * * *;

(vi) अपास्त करना या पंचाट अपास्त करने से इनकार करना ;

* * * * * * * * * ।"

अपीलार्थियों ने अधिनियम, 1978 की धारा 39(1)(vi) के अधीन इस न्यायालय का अवलंब लिया है । निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का डिक्रीत भाग मध्यस्थ के पंचाट से पूर्णतया बेतुका है । निचले न्यायालय के निर्णय के अंतिम भाग से यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों द्वारा फाइल अधिनियम, 1978 की धारा 30 के अधीन याचिका खारिज कर दी गई थी और पंचाट स्वीकार करते हुए वाद डिक्री कर दी गई थी । तथापि, इसके पश्चात् पारित डिक्री में मंजूर रकम पंचाट के निबंधनों के पूर्णतया विरुद्ध है । अधिनियम, 1978 की धारा 17 का यह समादेश है कि निर्णय, यदि पंचाट की संपुष्टि की जाती है, तो वह पंचाट के अनुसरण में होगा । इस व्यवस्था के बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता है कि डिक्री निर्णय के निबंधनों में होगी । यहां निर्णय और डिक्री के निबंधनों में पंचाट से भिन्नता है । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों द्वारा किए गए दावों और मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत रकमों को मिश्रित करते हुए वस्तुतः गंभीर त्रुटि कारित की है । पंचाट के निबंधनों में वाद में डिक्री करने के बजाय, पंचाट में दर्शित रकमों को अंगीकार करते हुए विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों द्वारा दावाकृत रकमों को मंजूर करने में गलती की है । प्रत्यर्थियों का निवेदन यह है कि निचले न्यायालय के निर्णय और डिक्री में की गई भूल उनकी जानकारी में तभी आया जब उसकी प्रमाणित प्रति को उन्होंने प्राप्त किया । निश्चित तौर पर यह दोनों पक्षों के प्रतिकूल है ।

39. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि इस

न्यायालय ने लिपिकीय और गणितीय भूल सुधार के लिए निर्णय और डिक्री में संशोधन करने हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 152 के अधीन निहित अपनी अधिकारिता का अवलंब लिया है । यह भी निवेदन किया कि पक्षकारों को अत्यधिक परेशानी होगी यदि पंचाट के विरोधाभास में रहते हुए निर्णय और डिक्री मंजूर की जाती है ।

40. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 152 न्यायालय को लिपिकीय या गणितीय भूल सुधार करने के लिए निर्णयों, डिक्रियों या आदेशों में संशोधन करने की शक्ति देती है । भूल किसी दुर्घटनावश या लोप के कारण हो सकती है । यह न्यायालय को किसी भी समय पर इसे सही करने की शक्ति देती है । न्यायालय इस शक्ति का अवलंब या तो स्वयं अपनी ओर से या पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर ले सकता है । अधिनियम, 1978 की धारा 17 इस बात पर जोर देती है कि डिक्री पंचाट के निबंधनों के अनुसार होगी । अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के परिशीलन से यह सुस्पष्ट होता है कि न्यायालय द्वारा पारित डिक्री में विभिन्न शीर्षकों के अधीन अंकों में भूल मात्र असावधानी के कारण हुई है । इसलिए, यह न्यायालय अधिनियम, 1978 की धारा 17 की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 152 के अधीन शक्तियों का अवलंब लेते हुए डिक्री के विरुद्ध प्रत्यर्थियों द्वारा उद्भूत आक्षेप को मंजूर किया है । यह मुद्दा भी प्रत्यर्थियों के पक्ष में विनिश्चित किया जाता है ।

41. पूर्वोक्त उल्लिखित कारणों से हमारा निष्कर्ष यह है कि अपील में कोई गुणागुण नहीं है । प्रत्यर्थियों द्वारा निर्णय और डिक्री में किए गए संशोधन का अभिवाक् मंजूर किए जाने योग्य पाया जाता है । अतएव, निम्नलिखित आदेश किया जाता है :–

परिणामत:,

(i) अपील, निचले न्यायालय द्वारा 2001 की माध्यस्थम् मूल याचिका सं. 27 को खारिज करने के आदेश की पुष्टि करते हुए, खारिज की जाती है ।

(ii) डिक्री में सुधार के लिए प्रति-आक्षेप/याचिका निम्नलिखित निबंधनों में मंजूर की जाती है –

(क) अपीलार्थी/प्रतिवादी, मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत दावा

सं. 1 के अधीन प्रतिकर के रूप में प्रत्यर्थियों/वादियों को तारीख 31 अक्तूबर, 1988 से तारीख 11 नवम्बर, 2008 तक 18 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ 21,057/- रुपए (इक्कीस हजार सत्तावन रुपए मात्र) का संदाय करेंगे ।

(ख) अपीलार्थी/प्रतिवादी, मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत दावा सं. 2 के अधीन प्रतिकर के रूप में प्रत्यर्थियों/वादियों को तारीख 31 अक्तूबर, 1988 से तारीख 11 नवम्बर, 2008 तक 18 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ 13,62,175/- रुपए (तेरह लाख बासठ हजार एक सौ पचहत्तर रुपए मात्र) का संदाय करेंगे ।

(ग) अपीलार्थी/प्रतिवादी, मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत दावा सं. 3 के अधीन प्रतिकर के रूप में प्रत्यर्थियों/वादियों को तारीख 31 अक्तूबर, 1988 से तारीख 11 नवम्बर, 2008 तक 18 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ 56,000/- रुपए (छप्पन हजार रुपए मात्र) का संदाय करेंगे ।

(घ) अपीलार्थी/प्रतिवादी, मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत दावा सं. 6 के अधीन प्रतिकर के रुप में प्रत्यर्थियों/वादियों को तारीख 31 अक्तूबर, 1988 से तारीख 11 नवम्बर, 2008 तक 18 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ 8,94,472/- रुपए (आठ लाख चौरानवे हजार चार सौ बहत्तर रुपए मात्र) का संदाय करेंगे ।

(ङ) उपर्युक्त उल्लिखित मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णीत संपूर्ण रकम (मूल रकम) डिक्री की तारीख से संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज पर देय होगा ।

(iii) अपीलार्थी, इस अपील में प्रत्यर्थियों द्वारा उपगत खर्चों का संदाय करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

क.

मेस उदखांजी करीमखांजी तालुकदार और एक अन्य

बनाम

विष्णु भाई गफूर भाई राबड़ी और अन्य

तारीख़ 20 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति आर. डी. कोठारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 151 और आदेश 39, नियम 1 – घोषणा और व्यादेश के लिए वाद – पुलिस सुरक्षा के लिए आवेदन – इस आधार पर इनकार कि संपत्ति का विनिर्दिष्ट माप नहीं दिया गया है – वादपत्र में सम्पत्ति के विनिर्दिष्ट माप और पहचान का उल्लेख – पुलिस सुरक्षा देने से इनकार किया जाना उचित नहीं है ।

आवेदकों ने निचले अपील न्यायालय अर्थात् पीठासीन अधिकारी फास्ट ट्रैक न्यायालय, अहमदाबाद (ग्रामीण) द्वारा 2008 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 142 में तारीख 2 जुलाई, 2009 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने मुख्य सिविल न्यायाधीश, ढोलका द्वारा 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 19 में तारीख 22 अक्तूबर, 2008 को पारित आदेश प्रदर्श-61 को अभिखंडित और अपास्त किया है । आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकार सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन पुलिस सुरक्षा के लिए अनुरोध कर सकता है । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए विचारण न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप किया है कि वाद संपत्ति का विनिर्दिष्ट माप द्वारा उल्लेख नहीं किया गया है और इन परिस्थितियों में पुलिस सुरक्षा के लिए अनुरोध वादियों के हक में मंजूर नहीं किया जा सकता । आवेदकों के विद्वान् अधिवक्ता श्री पठान ने न्यायालय का ध्यान वादियों द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए वाद पत्र की ओर दिलाया है जिसमें वादियों द्वारा विनिर्दिष्ट माप दिया गया है और अभिवचनों में वाद संपत्ति की पहचान के संबंध में सम्यक्त: उल्लेख किया गया है । अत: विद्वान् निचले अपील

न्यायालय द्वारा उपर्युक्त आधारों पर विचारण न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप उचित और विधिक नहीं है । अत: निचले अपील न्यायालय द्वारा 2008 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 142 में तारीख 2 जुलाई, 2009 को पारित आदेश अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । आवेदकों के विद्वान् अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि आवेदक-वादी पुलिस सुरक्षा के लिए आवश्यक धनराशि जमा करने के लिए तैयार और इच्छुक हैं । तारीख 22 अक्तूबर, 2008 का विचारण न्यायालय का आदेश पुन:स्थापित किया जाना आवश्यक है । यह भी निदेश दिया जाता है कि आवेदक-वादियों को आवेदक-वादियों द्वारा पुलिस सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रभार पहले ही जमा करने पर वाद संपत्ति में बाड़ लगाने के लिए पुलिस सुरक्षा दी जाए । (पैरा 8, 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2000]	ए. आई. आर. 2000 आंध्र प्रदेश 214 : **पी. शंकर राव** बनाम **श्रीमती बी. सुशीला** ;	8
[1982]	ए. आई. आर. 1982 दिल्ली 245 : **शशि कपूर** बनाम **ओ. पी. गोगने** ।	8

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 का विशेष सिविल आवेदन सं. 7688.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के अधीन विशेष सिविल आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री आसिफ खां आई. पठान

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री बेन्जीर एम. हकीम

न्यायमूर्ति आर. डी. कोठारी – आवेदकों ने निचले अपील न्यायालय अर्थात् पीठासीन अधिकारी फास्ट ट्रैक न्यायालय, अहमदाबाद (ग्रामीण) द्वारा 2008 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 142 में तारीख 2 जुलाई, 2009 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने मुख्य सिविल न्यायाधीश, ढोलका द्वारा 2007 के नियमित सिविल वाद

सं. 19 में तारीख 22 अक्तूबर, 2008 को पारित आदेश प्रदर्श-61 को अभिखंडित और अपास्त किया है । विद्वान् सिविल न्यायाधीश, ढोलका ने तारीख 22 अक्तूबर, 2008 के आदेश द्वारा वादी-आवेदकों के आवेदन को मंजूर किया है और न्यायालय ने वादी-आवेदकों द्वारा आवश्यक प्रभारों का संदाय करने पर न्यायालय आयुक्त नियुक्त करने का आदेश किया है । उक्त न्यायालय ने यह आदेश किया है कि वाद संपत्ति के चारों ओर बाड़ लगाने का कार्य करते समय आयुक्त स्थल पर मौजूद रहेगा ।

2. आवेदक-वादियों ने जो उक्त वाद में प्रतिवादी हैं, वर्तमान प्रत्यर्थियों के विरुद्ध घोषणा और व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था । वाद संपत्ति को टीका सं. 5, नगर सर्वेक्षण सं. 387, 388, 389 और 398 के रूप में निर्दिष्ट किया गया है । सारत: आवेदक-वादियों ने यह अनुरोध किया था कि प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों को आवेदक-वादियों द्वारा वाद संपत्ति का किसी भी प्रकार का उपयोग करने में हस्तक्षेप करने से रोका जाए ।

3. आवेदकों की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री आसिफ खां पठान को सुना । प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् अधिवक्ता मौजूद नहीं हैं ।

4. आवेदकों के विद्वान् अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों द्वारा 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 19 में फाइल किए गए उत्तर (इस आवेदन में पृष्ठ सं. 60 पर उपाबंध "सी") की ओर दिलाया है जिसमें प्रत्यर्थियों ने यह कथन किया है कि उनका वादियों की वाद संपत्ति से कोई लेना देना या संबंध नहीं है और वादियों ने वाद केवल प्रतिवादियों को तंग करने के लिए फाइल किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादियों द्वारा फाइल किए गए दो पैराओं के बहुत संक्षिप्त उत्तर में प्रतिवादियों ने अन्य कोई ब्यौरे नहीं दिए हैं ।

5. आवेदकों के विद्वान् अधिवक्ता श्री पठान ने यह दलील दी है कि आवेदक-वादियों ने 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 19 में अंतरिम व्यादेश के लिए अनुरोध किया है और वादियों का उक्त आवेदन (प्रदर्श-5) विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 23 मई, 2008 के आदेश द्वारा मंजूर किया गया था । प्रतिवादियों ने उक्त आदेश के विरुद्ध 2008 की सिविल अपील सं. 83 फाइल की थी और अपील न्यायालय द्वारा उक्त अपील खारिज कर दी गई थी । इसके विरुद्ध मूल प्रतिवादियों ने इस न्यायालय के समक्ष

2008 का विशेष सिविल आवेदन सं. 11563 फाइल किया था जो मूल प्रतिवादियों द्वारा वापस ले लिया गया था और तारीख 17 सितंबर, 2009 के आदेश द्वारा मूल प्रतिवादियों को 2008 का विशेष आवेदन सं. 11563 वापस लेना अनुज्ञात किया गया था ।

6. इसके पश्चात् आवेदक-वादियों ने उक्त संपत्ति के चारों ओर बाड़ लगाने का कार्य करने के लिए पुलिस सुरक्षा प्रदान करने के लिए आवेदन (प्रदर्श-61) फाइल किया था । विचारण न्यायालय ने आयुक्त की नियुक्ति के लिए तारीख 22 अक्तूबर, 2008 का आदेश पारित किया जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है और विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 22 अक्तूबर, 2008 का आदेश निचले अपील न्यायालय द्वारा तारीख 2 जुलाई, 2009 के आदेश द्वारा अपास्त कर दिया गया । इसलिए वर्तमान आवेदन फाइल किया गया है ।

7. आवेदकों की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री पठान ने मेरा ध्यान इस न्यायालय (कोरम : माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती अभिलाषा कुमारी) द्वारा तारीख 6 अगस्त, 2009 को पारित आदेश की ओर दिलाया है जिसमें दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् अंतरिम अनुतोष मंजूर किया गया था और विद्वान् निचले अपील न्यायालय का आदेश इस न्यायालय द्वारा अग्रिम आदेश पारित करने तक रोक दिया गया था ।

8. आवेदकों के विद्वान् अधिवक्ता श्री पठान ने यह दलील दी है कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने गलत रूप से अपील ग्रहण की है क्योंकि आवेदक-वादियों का विचारण न्यायालय के समक्ष आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन फाइल किया गया था न कि आदेश 39 के अधीन । यदि ऐसा है तो निचले अपील न्यायालय के समक्ष अपील ग्राह्य नहीं है । दलील में बल है । पक्षकार सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन पुलिस सुरक्षा के लिए अनुरोध कर सकता है । इस संबंध में आवेदकों के विद्वान् अधिवक्ता श्री पठान ने **शशि कपूर** बनाम **ओ. पी. गोगने**[1] और **पी. शंकर राव** बनाम **श्रीमती बी. सुशीला**[2] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों की ओर दिलाया है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1982 दिल्ली 245.

[2] ए. आई. आर. 2000 आंध्र प्रदेश 214.

9. विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए विचारण न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप किया है कि वाद संपत्ति का विनिर्दिष्ट माप द्वारा उल्लेख नहीं किया गया है और इन परिस्थितियों में पुलिस सुरक्षा के लिए अनुरोध वादियों के हक में मंजूर नहीं किया जा सकता । आवेदकों के विद्वान् अधिवक्ता श्री पठान ने मेरा ध्यान वादियों द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए वादपत्र की ओर दिलाया है जिसमें वादियों द्वारा विनिर्दिष्ट माप दिया गया है और अभिवचनों में वाद संपत्ति की पहचान के संबंध में सम्यक्त: उल्लेख किया गया है । अत: विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा उपर्युक्त आधारों पर विचारण न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप उचित और विधिक नहीं है ।

10. अत: निचले अपील न्यायालय द्वारा 2008 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 142 में तारीख 2 जुलाई, 2009 को पारित आदेश अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । आवेदकों के विद्वान् अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि आवेदक-वादी पुलिस सुरक्षा के लिए आवश्यक धनराशि जमा करने के लिए तैयार और इच्छुक हैं । तारीख 22 अक्तूबर, 2008 का विचारण न्यायालय का आदेश पुन:स्थापित किया जाना आवश्यक है । यह भी निदेश दिया जाता है कि आवेदक-वादियों को आवेदक-वादियों द्वारा पुलिस सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रभार पहले ही जमा करने पर वाद संपत्ति में बाड़ लगाने के लिए पुलिस सुरक्षा दी जाए ।

11. उपर्युक्त विवेचना के साथ यह आवेदन मंजूर किया जाता है । उपर्युक्त सीमा तक सम्पूर्ण आदेश द्वारा आवेदन निपटाया जाता है । सीधी सेवा अनुज्ञात की जाती है ।

आवेदन मंजूर किया गया ।

मह.

बेबी रानी देब (सुश्री) और अन्य

बनाम

मानिक डे और अन्य

तारीख़ 21 नवंबर, 2013

न्यायमूर्ति बी. पी. केतके

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 41 – दृश्यमान स्वामी द्वारा भूमि का अन्तरण – विक्रय-विलेख के आधार पर भूमि पर अधिकार, हक और हित का दावा – वाद के अभिवचनों में इस बात का उल्लेख न होना कि दृश्यमान स्वामी अर्थात् विक्रेता वास्तविक स्वामी की अभिव्यक्त या विवक्षित सम्मति से संपत्ति का स्वामी था – वादी-क्रेता अधिनियम की धारा 41 के संरक्षण का हक़दार नहीं है ।

वादियों द्वारा यह अपील विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), नागांव द्वारा 2001 की हक अपील सं. 40 में तारीख 26 मार्च, 2003 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा वादियों की अपील खारिज करते हुए विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), होजई शंकर देव नगर द्वारा 1992 के हक वाद सं. 32 में तारीख 28 सितंबर, 2001 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है और जिसके अधीन वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा वादियों के रूप में फाइल किया गया वाद खारिज किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वादी ने यह कथन करते हुए अधिकार, हक और हित का दावा किया है कि चूंकि ब्रजेन्द्र ने जो हक रखता था, वादी के हक में तारीख 6 मार्च, 1963 के विक्रय-विलेख द्वारा भूमि का अंतरण किया है इसलिए उसे इस भूमि में अधिकार, हक और हित अर्जित हो गया है । इस बारे में किसी भी प्रकार का कोई अभिवचन नहीं किया गया है कि ब्रजेन्द्र दृश्यमान स्वामी था ; उसने वास्तविक स्वामी की अभिव्यक्त या विवक्षित सम्मति द्वारा ऐसा किया है ; और वादी ने यह अभिनिश्चित करने के लिए कि ब्रजेन्द्र को अंतरण करने की शक्ति प्राप्त थी, युक्तियुक्त सावधानी बरतते हुए सद्भावपूर्वक कार्य किया है जिससे कि वह अधिनियम की धारा 41 का फायदा ले सके । अभिवचनों के अभाव में इस बारे में कोई भी साक्ष्य भले ही वह

अभिलेख पर उपलब्ध हो, वाद या अपील का विनिश्चय करते समय नहीं पढ़ा जा सकता । वादी द्वारा जिसकी पी. डब्ल्यू.-1 के रूप में परीक्षा की गई है, पेश किए गए साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि उसने अपने अभिसाक्ष्य में यह दावा नहीं किया है कि वह अधिनियम की धारा 41 का फायदा पाने का हकदार है । उसने यह निरंतर कथन किया है कि ब्रजेन्द्र को हक प्राप्त था जिसने तारीख 6 मार्च, 1963 का विक्रय-विलेख निष्पादित करते हुए भूमि अंतरित कर दी थी और इसलिए उसने वाद भूमि के ऊपर अधिकार, हक और हित अर्जित कर लिया है । डी. डब्ल्यू.-1 की वादी द्वारा की गई प्रतिपरीक्षा के दौरान उसके साक्ष्य से यह भी प्रकट होता है कि राजस्व अभिलेख में ब्रजेन्द्र का नाम अभिलिखित नहीं किया गया था अपितु प्रतिवादी सं. 1 और 2 के दादा का नाम उस समय अभिलिखित था जब तारीख 6 मार्च, 1963 का विक्रय-विलेख निष्पादित किया गया था । तारीख 6 मार्च, 1963 के विक्रय-विलेख प्रदर्श-1 में ब्रजेन्द्र ने भी वास्तविक स्वामी होने का दावा किया है न कि दृश्यमान स्वामी होने का । अत: यह स्पष्ट होता है कि वादी ने यह अभिनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्त सावधानी नहीं बरती कि ब्रजेन्द्र को अंतरण करने की शक्ति प्राप्त थी । निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्रियों से यह भी स्पष्ट है कि वादी भूमि का अनुज्ञेय अधिभोगी पाया गया था । द्वितीय अपील में तथ्य के अभिलिखित ऐसे समवर्ती निष्कर्ष में किसी अनुचितता को दर्शाए बिना हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । वार्षिक पट्टा भूमि के संबंध में अनुज्ञेय कब्जा भी अनुज्ञेय है, तथापि, यह तब तक रहेगा जब तक कि वार्षिक पट्टा रद्द न किया जाए और जब तक कि असम भूमि और राजस्व विनियमों के उपबंधों के अधीन अनवीकरण कार्यवाहियां आरंभ करके ऐसी वार्षिक पट्टा कार्यवाहियां रद्द नहीं की जातीं । (पैरा 14, 15 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2033 = (2008) 4 एस. सी. सी. 594 : **अनथुला सुधाकर** बनाम **पी. बुची रेड्डी और अन्य** ।	9, 16
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1058 = (2007) 2 एस. सी. सी. 404 : **हरदेव सिंह** बनाम **गुरमैल सिंह** ।	8, 12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की आर. एस. ए. सं. 134.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री के. के. महंत, एस. सिंह और सुश्री डी. डेका

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री ए. डी. चौधरी, डी. एन. भट्टाचार्य

न्यायमूर्ति बी. पी. केतके – वादियों द्वारा यह अपील विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), नागांव द्वारा 2001 की हक अपील सं. 40 में तारीख 26 मार्च, 2003 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा वादियों की अपील खारिज करते हुए विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), होजई शंकर देव नगर द्वारा 1992 के हक वाद सं. 32 में तारीख 28 सितंबर, 2001 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है और जिसके अधीन वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा वादियों के रूप में फाइल किया गया वाद खारिज किया गया है ।

2. वर्तमान अपीलार्थियों के पूर्व हिताधिकारी बेनू मोहन देव ने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथित करते हुए कि उसने उक्त भूमि तारीख 6 मार्च, 1963 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख (प्रदर्श-1) द्वारा प्रतिवादियों के पूर्व हिताधिकारी ब्रजेन्द्र चौधरी डे से क्रय की थी, वादपत्र की अनुसूची में उल्लिखित एक कठा (गट्ठा) माप की भूमि के भूखंड पर अपने अधिकार, हक और हित की घोषणा के लिए और कब्जे की पुष्टि तथा स्थायी व्यादेश के लिए अनुरोध करते हुए एक वाद फाइल किया था । यह कथन किया गया है कि उसने उसी समय भूमि पर काबिज होते हुए उस पर एक मकान का निर्माण कर लिया था और इस मकान के करों और राजस्व का संदाय करते हुए उसमें निवास कर रहा था । यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रतिवादियों ने आरंभतः तारीख 20 दिसंबर, 1991 को और उसके पश्चात् तारीख 28 फरवरी, 1992 को भूमि पर और वादी के मकान पर अतिचार किया, उसकी पत्नी और पुत्रियों पर हमला किया तथा वाद भूमि की उत्तरी-पूर्वी दीवार से सीमा स्तंभ हटाया जिसके कारण उपर्युक्त उल्लिखित वाद फाइल करने की आवश्यकता हुई ।

3. प्रतिवादियों ने संयुक्त कथन फाइल करके वाद का विरोध किया

जिसमें उन्होंने भूमि के संबंध में वादी के दावे से इनकार किया और अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथित किया कि प्रतिवादियों के पूर्व हिताधिकारी ने कभी भी उक्त भूमि विक्रीत नहीं की और उन्हें ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था और वाद भूमि संपत्ति प्रतिवादी सं. 1 और 2 ब्रजेन्द्र की पत्नियों को और वादी के अभिकथित विक्रेता को विरासत में मिली थी । प्रतिवादियों ने यह भी अभिवाक् किया कि वादी इस शर्त के साथ अनुज्ञेय अधिभोगी था कि जब उसे भूमि खाली करने के लिए कहा जाएगा तो वह उसे खाली कर देगा । तथापि, उसने प्रतिवादियों द्वारा बार-बार अनुरोध किए जाने पर भी वाद भूमि खाली नहीं की ।

4. विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर अवधारण के लिए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

(i) क्या वाद के लिए कोई वाद हेतु उत्पन्न हुआ है ?

(ii) क्या वाद ग्रहण किए जाने योग्य है ?

(iii) क्या वाद में संपत्ति का सही मूल्यांकन किया गया है और क्या उचित न्यायालय फीस संदत्त की गई है ?

(iv) क्या वादी का वाद भूमि पर कोई अधिकार और हक है और क्या वह वाद भूमि पर काबिज है ?

(v) क्या वादी अनुरोध की गई डिक्री के लिए हकदार है ?

(vi) पक्षकार किस अनुतोष के लिए, यदि कोई हो, हकदार हैं ?

अतिरिक्त विवाद्यक

(i) क्या वादी ने तारीख 6 मार्च, 1963 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख सं. 1323 के आधार पर ब्रजेन्द्र चौधरी डे से अपने हक में वाद भूमि पर कब्जा पूर्ण अधिकार अर्जित कर लिया है ?

(ii) क्या वादी वाद भूमि के ऊपर प्रतिवादियों के अधीन अनुज्ञेय अधिभोगी/लाइसेंसी है ?

5. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद खारिज कर दिया कि चूंकि

ब्रजेन्द्र का वाद भूमि के ऊपर कोई अधिकार, हक और हित नहीं था इसलिए वह इसे अंतरित नहीं कर सकता था और इसलिए वादी ने तारीख 6 मार्च, 1963 के विक्रय-विलेख (प्रदर्श-1) द्वारा कोई अधिकार, हित अर्जित नहीं किया और भूमि प्रतिवादी सं. 1 और 2 को विरासत में मिली संपत्ति है । इससे व्यथित होकर वादी ने उपर्युक्त अपील फाइल की जो विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए खारिज कर दी गई । अतः वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

6. यह अपील सुनवाई के लिए तारीख 9 सितंबर, 2003 के आदेश द्वारा विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों पर स्वीकार की गई थी :–

> "(i) क्या विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए तारीख 6 मार्च, 1963 के विक्रय-विलेख प्रदर्श-1 को खारिज करने में विधि की गलती की है कि यह विक्रय-विलेख वादी को विधिमान्य हक प्रदत्त नहीं कर सकता ?
>
> (ii) क्या अनुज्ञप्ति/अनुज्ञेय अधिभोगी का सिद्धांत वार्षिक पट्टा भूमि के संबंध में लागू है जो पट्टा कब्जे के अंतरण के लिए रद्द किए जाने योग्य है ?"

7. मैंने अपीलार्थी/वादियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री के. के. महंत और प्रतिवादी/प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री ए. डी. चौधरी को सुना ।

8. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री महंत ने तारीख 6 मार्च, 1963 के विक्रय-विलेख प्रदर्श-1 की अन्तर्वस्तु और पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य विशेषतया डी. डब्ल्यू.-1 (जो वाद में प्रतिवादी सं. 3 है) के साक्ष्य का निर्देश करते हुए यह दलील दी कि इससे यह स्पष्ट है कि वाद भूमि प्रतिवादी सं. 1 और 2 के पति ब्रजेन्द्र जिसे संपत्ति अपने पिता से विरासत में मिली थी, के पूर्णतया नियंत्रण में थी, वह उसका प्रबंध करता था और स्वयं को वाद भूमि के स्वामी के रूप में पेश करता था और वादी ने भूमि के स्वामित्व के संबंध में आवश्यक छानबीन करने के पश्चात् उससे भूमि क्रय की थी और उसने भूमि के अंतरण के लिए ब्रजेन्द्र के प्राधिकार की जांच की थी इसलिए ऐसा अंतरण संपत्ति अंतरण अधिनियम (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 41 में उल्लिखित उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए विधिमान्य है । यह भी दलील दी गई है कि डी. डब्ल्यू.-1 के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि ब्रजेन्द्र की

पत्नियां अर्थात् प्रतिवादी सं. 1 और 2 को वादी के हक में ब्रजेन्द्र द्वारा अंतरण के संबंध में जानकारी थी जिन्होंने 1963 से 1991 तक वाद भूमि पर वादी के कब्जे के संबंध में कभी भी कोई आक्षेप नहीं किया और तारीख 20 दिसंबर, 1991 को पहली बार वाद भूमि के भाग पर कब्जा करने का प्रयास करके वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया । विद्वान् ज्येष्ठ कांउसेल ने यह दलील दी कि यद्यपि वादपत्र में दृश्यमान स्वामी द्वारा अंतरण के आधार पर अधिकार का दावा करते हुए वादपत्र में कोई विनिर्दिष्ट अभिवाक् नहीं किया गया है क्योंकि पेश किए गए साक्ष्य का यह आधार है अर्थात् तारीख 6 मार्च, 1963 के विक्रय-विलेख द्वारा भूमि के क्रय करने के संबंध में अभिवाक् किया गया है इसलिए निचले न्यायालयों को वादी का वाद खारिज नहीं करना चाहिए था । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि चूंकि वादी ने दृश्यमान स्वामी द्वारा विधिमान्य अंतरण को गठित करने वाले सभी चारों संघटक साबित किए हैं इसलिए वादी का वाद डिक्री किया जाना चाहिए । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में उच्चतम न्यायालय द्वारा **हरदेव सिंह** बनाम **गुरमैल सिंह**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है ।

9. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री चौधरी ने निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और डिक्रियों का समर्थन करते हुए यह दलील दी कि यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 6, नियम 2 तात्विक तथ्यों और विशिष्टियों के संबंध में अभिवचन करने की अपेक्षा करता है, तथापि, दृश्यमान स्वामी ने अंतरण द्वारा हक के दावे से संबंधित किसी तथ्य का उल्लेख नहीं किया है और इसलिए पक्षकारों द्वारा इस मुद्दे पर दिए गए किसी भी साक्ष्य को पढ़ा नहीं जा सकता । अतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी इस बात के लिए दावा नहीं कर सकते कि उन्होंने अधिनियम की धारा 41 के आधार पर अधिकार, हक और हित अर्जित कर लिया है । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थियों ने यह उपदर्शित करने के लिए भी कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है कि उन्होंने यह सुनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि अंतरक अंतरण करने के लिए सशक्त था, भले ही अन्य शर्तों के अतिरिक्त जोकि पूरी की जानी चाहिए, अधिनियम की धारा 41 के

---

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1058 = (2007) 2 एस. सी. सी. 404.

अधीन दृश्यमान स्वामी द्वारा विधिमान्य अंतरण गठित होता है । विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में उच्चतम न्यायालय द्वारा **अनथुला सुधाकर** बनाम **पी. बुची रेड्डी और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है ।

10. मैंने पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया और दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री का परिशीलन भी किया । मैंने पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य का भी परिशीलन किया, यद्यपि ऐसा करना आवश्यक नहीं है जब तक कि अनुचितता के बारे में अभिवचन न किया गया हो ।

11. वादी के रूप में वर्तमान अपीलार्थियों के पूर्व हिताधिकारी ने यह अभिवचन करते हुए उक्त वाद संस्थित किया कि एक कठा (गट्ठा) भूमि पर उसका अधिकार, हक और हित है कि उसने ब्रजेन्द्र द्वारा निष्पादित तारीख 6 मार्च, 1963 के विक्रय-विलेख द्वारा अंतरण के आधार पर भूमि पर हक अर्जित कर लिया है । वादी ने यह अभिवचन नहीं किया कि ब्रजेन्द्र द्वारा किया गया विक्रय विधिमान्य विक्रय है क्योंकि वह अधिनियम की धारा 41 के अर्थान्तर्गत दृश्यमान स्वामी है ।

12. उक्त अधिनियम की धारा 41 यह उपबंध करती है कि जहां कि स्थावर संपत्ति में हितबद्ध व्यक्तियों को अभिव्यक्त या विवक्षित सम्मति से कोई व्यक्ति ऐसी संपत्ति का दृश्यमान स्वामी है और उसे प्रतिफलार्थ अंतरित करता है, वहां अंतरण इस आधार पर शून्यकरणीय होगा कि अंतरक ऐसा करने के लिए प्राधिकृत नहीं था परंतु यह तब जबकि अंतरिती ने यह अभिनिश्चित करने के लिए कि अंतरक अंतरण करने की शक्ति रखता था, युक्तियुक्त सावधानी बरतने के पश्चात् सद्भावपूर्वक कार्य किया हो । अतः दृश्यमान स्वामी द्वारा विधिमान्य अंतरण गठित करने के लिए चार शर्तों के बारे में अभिवचन करना और उनको साबित करना आवश्यक है, अर्थात् – (i) अंतरक दृश्यमान स्वामी है, (ii) वह वास्तविक स्वामी की अभिव्यक्त या विवक्षित सम्मति द्वारा ऐसा करता है, (iii) अंतरण प्रतिफल के लिए किया गया है, और (iv) अंतरक ने सद्भावपूर्वक कार्य किया है और उसने यह अभिनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि अंतरक अंतरण करने के लिए सशक्त था । (**हरदेव सिंह** बनाम **गुरमैल**

---

[1] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2033 = (2008) 4 एस. सी. सी. 594.

सिंह[1] वाला मामला देखिए) । उपर्युक्त चार शर्तों में से किसी के अभाव में अंतरिती अधिनियम की धारा 41 के आधार पर अधिकार का दावा नहीं कर सकता ।

13. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 6 नियम 2(1) यह उपबंध करता है कि हर अभिवचन में उन तात्विक तथ्यों का जिन पर अभिवचन करने वाला पक्षकार, यथास्थिति, अपने दावे या अपनी प्रतिरक्षा के लिए निर्भर करता है और केवल उन तथ्यों का, न कि उस साक्ष्य का जिसके द्वारा वे साबित किए जाने हैं, संक्षिप्त कथन अन्तर्विष्ट होगा । विधि की यह सुस्थापित स्थिति है कि पक्षकारों द्वारा पेश किया गया कोई भी साक्ष्य वाद-पत्र में या लिखित कथन में सुसंगत अभिवचनों के अभाव में नहीं पढ़ा जा सकता ।

14. वर्तमान मामले में जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, वादी ने यह कथन करते हुए अधिकार, हक और हित का दावा किया है कि चूंकि ब्रजेन्द्र ने जो हक रखता था, वादी के हक में तारीख 6 मार्च, 1963 के विक्रय-विलेख द्वारा भूमि का अंतरण किया है इसलिए उसे इस भूमि में अधिकार, हक और हित अर्जित हो गया है । इस बारे में किसी भी प्रकार का कोई अभिवचन नहीं किया गया है कि ब्रजेन्द्र दृश्यमान स्वामी था; उसने वास्तविक स्वामी की अभिव्यक्त या विवक्षित सम्मति द्वारा ऐसा किया है; और वादी ने यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या ब्रजेन्द्र को अंतरण करने की शक्ति प्राप्त थी, युक्तियुक्त सावधानी बरतते हुए सद्भावपूर्वक कार्य किया है जिससे कि वह अधिनियम की धारा 41 का फायदा ले सके । अभिवचनों के अभाव में इस बारे में कोई भी साक्ष्य भले ही वह अभिलेख पर उपलब्ध हो, वाद या अपील का विनिश्चय करते समय नहीं पढ़ा जा सकता ।

15. वादी द्वारा जिसकी पी. डब्ल्यू.-1 के रूप में परीक्षा की गई है, पेश किए गए साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि उसने अपने अभिसाक्ष्य में यह दावा नहीं किया है कि वह अधिनियम की धारा 41 का फायदा पाने का हकदार है । उसने यह निरंतर कथन किया है कि ब्रजेन्द्र को हक प्राप्त था जिसने तारीख 6 मार्च, 1963 का विक्रय-विलेख निष्पादित करते हुए भूमि अंतरित कर दी थी और इसलिए उसने वाद भूमि के ऊपर अधिकार, हक

---

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1058 = (2007) 2 एस. सी. सी. 404.

और हित अर्जित कर लिया है । डी. डब्ल्यू.-1 की वादी द्वारा की गई प्रतिपरीक्षा के दौरान उसके साक्ष्य से यह भी प्रकट होता है कि राजस्व अभिलेख में ब्रजेन्द्र का नाम अभिलिखित नहीं किया गया था अपितु प्रतिवादी सं. 1 और 2 के दादा का नाम उस समय अभिलिखित था जब तारीख 6 मार्च, 1963 का विक्रय-विलेख निष्पादित किया गया था । तारीख 6 मार्च, 1963 के विक्रय-विलेख प्रदर्श-1 में ब्रजेन्द्र ने भी वास्तविक स्वामी होने का दावा किया है न कि दृश्यमान स्वामी होने का । अत: यह स्पष्ट होता है कि वादी ने यह अभिनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्त सावधानी नहीं बरती कि क्या ब्रजेन्द्र को अंतरण करने की शक्ति प्राप्त थी ।

16. उच्चतम न्यायालय ने **अनथुला सुधाकर** बनाम **पी. बुची रेड्डी और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी द्वारा अधिनियम की धारा 41 की सहायता से भूमि के किसी भूखंड पर अपने अधिकार, हक और हित की घोषणा के लिए किसी वाद में सफल होने के लिए यह अभिवचन करना चाहिए कि अंतरक वास्तविक स्वामी की अभिव्यक्त या विवक्षित सम्मति से संपत्ति का दृश्यमान स्वामी है और अंतरिती ने यह अभिनिश्चित करने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि अंतरक को अंतरण करने की शक्ति प्राप्त थी और उसने विधिमान्य प्रतिफल के लिए संपत्ति क्रय करने में सद्भावपूर्वक कार्य किया था और अंतरक द्वारा अंतरिती के हक में अंतरण शून्यकरणीय नहीं था । उच्चतम न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि इस आशय के अभिवचनों के अभाव में पक्षकारों द्वारा दृश्यमान स्वामी द्वारा अंतरण के प्रश्न पर पेश किए गए साक्ष्य का परिशीलन करने का कोई प्रश्न ही नहीं है ।

17. निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्रियों से यह भी स्पष्ट है कि वादी भूमि का अनुज्ञेय अधिभोगी पाया गया था । द्वितीय अपील में तथ्य के अभिलिखित ऐसे समवर्ती निष्कर्ष में किसी अनुचितता को दर्शाए बिना हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । वार्षिक पट्टा भूमि के संबंध में अनुज्ञेय कब्जा भी अनुज्ञेय है, तथापि, यह तब तक रहेगा जब तक कि वार्षिक पट्टा रद्द न किया जाए और जब तक कि असम भूमि और राजस्व विनियमों के उपबंधों के अधीन अनवीकरण कार्यवाहियां आरंभ करके ऐसी वार्षिक पट्टा कार्यवाहियां रद्द नहीं की जातीं ।

---

[1] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2033 = (2008) 4 एस. सी. सी. 594.

18. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए मुझे इस अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और इसलिए यह अपील खारिज की जाती है । पक्षकारों को आरंभ से ही अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करने का निदेश दिया जाता है ।

19. कार्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह अभिलेख को तुरन्त वापस भेजे ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 666 **जम्मू-कश्मीर**

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

श्रीमती खाती और अन्य

तारीख 6 नवम्बर, 2013

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – चालक द्वारा यात्री को यान की छत पर बैठने की अनुमति देना – प्रभाव – जहां चालक ने विधिविरुद्ध रूप से यात्री को यान की छत पर बैठने के लिए अनुज्ञात किया हो वहां चालक का ऐसा कार्य यान को लापरवाही और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के अन्तर्गत आएगा – चालक और स्वामी दुर्घटना के लिए जिम्मेदार हैं ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर – धनराशि – जहां दावेदारों ने अपना पक्षकथन साबित कर दिया हो वहां न्यायालय को प्रतिकर अधिनिर्णीत करने के लिए विधि के अनुसार ही गुणक लागू करना चाहिए ।

यान दुर्घटना में मृत्यु हो जाने के कारण मृतक के दावेदारों द्वारा दावा याचिका फाइल की गई थी । विद्वान् अधिकरण ने दावा याचिका स्वीकार कर ली जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील

फाइल की गई । अपील का तद्नुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – दावेदारों द्वारा पेश किया गया साक्ष्य अखंडित रहा है । तथापि, अपीलार्थी ने श्री हरीश रैना की परीक्षा कराई है जिसने अन्वेषक की हैसियत में अन्वेषण किया था और उसने यह अभिकथन किया है कि मृतक यान की छत के ऊपर बैठा था जब उसे क्षतियां पहुंची थीं । उच्चतम न्यायालय ने और इस न्यायालय ने अनेक मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि स्वयं चालक द्वारा यान की छत के ऊपर बैठने के लिए यात्री को अनुमति देना चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक रीत में यान चलाने के अंतर्गत आता है । अतः विवाद्यक सं. 1 पर दिए गए निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है । (पैरा 7)

मृतक अविवाहित था और दावेदारों ने साक्ष्य देकर उसकी आय 2,000/- रुपए प्रति दिन साबित की है । अधिकरण ने अंदाजा लगाने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि मृतक की कमाई 6,000/- रुपए प्रति मास थी । तथापि, अधिकरण ने उसके वैयक्तिक खर्चों के रूप में आय का एक तिहाई भाग कम करके गलती की है जबकि वस्तुतः किसी अविवाहित के मामले में कमी 50 प्रतिशत होनी चाहिए जैसाकि सरला वर्मा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है । अधिकरण ने मामले में गुणक लागू करने में भी गलती की है । मृतक और दावेदारों की आयु को ध्यान में रखते हुए मोटर यान अधिनियम, 1988 की परिशिष्ट अनुसूची का परिशीलन करने पर मामले में समुचित गुणक 12 लागू किया जाना चाहिए । अधिकरण ने अंतिम संस्कार के खर्चे के अधीन 10,000/- रुपए और संपदा की हानि के अधीन 10,000/- रुपए प्रदान करने में भी गलती की है । दावेदार वस्तुतः उक्त शीर्षकों के अधीन क्रमशः 2,000/- रुपए और 2,500/- रुपए के लिए हकदार हैं । (पैरा 8, 9 और 10)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : सी. आई. एम. ए. संख्या 15/2013.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री जे. ए. कावूसा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एस. ए. मकरू

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – अपीलार्थियों ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, श्रीनगर (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिकरण' कहा गया है) द्वारा तारीख 24 सितम्बर, 2012 को पारित उस अधिनिर्णय (जिसे आगे संक्षेप में

'आक्षेपित अधिनिर्णय' कहा गया है) को प्रश्नगत किया है जिसके द्वारा दावेदार/प्रत्यर्थियों को दावा याचिका के फाइल करने की तारीख से अंतिम निर्णय होने तक 6 प्रतिशत ब्याज के साथ 5,06,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की गई है ।

संक्षिप्त तथ्य

2. मंजूर अहमद शेख पुत्र रसूल शेख निवासी जलूसा चरारे शरीफ तारीख 22 अगस्त, 2008 को टाटा 407 (मेटाडोर) जिसका रजिस्ट्रेशन सं. जे. के. 01एफ/5458 है, को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण तरीके से चलाते हुए चरारे शरीफ से चंदूरा की ओर आ रहा था । रास्ते में रडार स्टेशन के पास यान दुर्घटनाग्रस्त हो गया । मृतक को जो यान में यात्रा कर रहा था, क्षतियां पहुंचीं और क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । रणबीर पीनल कोड (जिसे आगे संक्षेप में आर. पी. सी. कहा गया है) की धारा 279, 337 और 304-क के अधीन दंडनीय अपराध के लिए संबंधित पुलिस स्टेशन में प्रथम इत्तिला सूचना सं. 141/2008 रजिस्ट्रीकृत कराई गई थी ।

3. यान दुर्घटना से पीड़ित होने के नाते, दावेदार सं. 1 से 5 ने प्रतिकर मंजूर करने के लिए दावा याचिका फाइल की थी । दावे का केवल अपीलार्थी द्वारा विरोध किया गया । अपराध से संबंधित यान के स्वामी और चालक ने दावा याचिका का विरोध नहीं किया और इसलिए, एकपक्षीय कार्यवाही की गई । अधिकरण ने निर्धारण के लिए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

> "1. क्या तारीख 22 अगस्त, 2008 को प्रत्यर्थी चालक टाटा 407 को जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. जे. के. 01एफ/5458 है, रडार स्टेशन के पास चरारे शरीफ से चंदूरा की ओर जाते हुए उतावलेपन, उपेक्षापूर्वक रीति में और लापरवाही से चला रहा था जिससे उसका उक्त यान से नियंत्रण हट गया और उक्त यान पलट गया और मोहम्मद इकबाल शाह को जो उक्त यान में यात्रा कर रहा था, गंभीर क्षतियां पहुंचीं जिससे उसकी अस्पताल में मृत्यु हो गई? ओ. पी. पी. ।
>
> 2. क्या प्रत्यर्थी स्वामी को प्रत्यर्थी चालक के पास अवैध/निष्प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति होने की जानकारी थी जो वस्तुतः दुर्घटना का कारण बनी और यदि हां तो क्या प्रत्यर्थी-स्वामी ने बीमा संविदा को भंग किया जिससे कि बीमा कंपनी बीमा संविदा से उदभूत अपने दायित्व से मुक्त हो गई है? ओ. पी. आर. कंपनी ।

3. यदि विवाद्यक सं. 1 सकारात्मक रूप से साबित होता तो याची प्रतिकर की कितनी धनराशि के लिए हकदार है और किस अनुपात में? ओ. पी. पी. ।"

4. दावेदारों ने अब्दुल राशिद शाह, फय्याज़ अहमद मीर और मुश्ताक अहमद डार की साक्षियों के रूप में परीक्षा कराई है और दावेदार शाहनवाज हुसैन और हमीद स्वयं के साक्षी के रूप में पेश हुए हैं ।

5. अपीलार्थी/बीमाकर्ता ने केवल एक साक्षी हरीश रैना की परीक्षा कराई ।

6. दावेदारों द्वारा परीक्षा किए गए सभी साक्षियों ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि चालक यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था और इस कारण से दुर्घटना हुई । मृतक को उक्त दुर्घटना में गंभीर क्षतियां पहुंचीं और क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई ।

7. दावेदारों द्वारा पेश किया गया साक्ष्य अखंडित रहा है । तथापि, अपीलार्थी ने श्री हरीश रैना की परीक्षा कराई है जिसने अन्वेषक की हैसियत में अन्वेषण किया था और उसने यह अभिकथन किया है कि मृतक यान की छत के ऊपर बैठा था जब उसे क्षतियां पहुंचीं थीं । उच्चतम न्यायालय ने और इस न्यायालय ने अनेक मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि स्वयं चालक द्वारा यान की छत के ऊपर बैठने के लिए यात्री को अनुमति देना चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक रीत में यान चलाने के अंतर्गत आता है । अतः विवाद्यक सं. 1 पर दिए गए निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है ।

8. मृतक अविवाहित था और दावेदारों ने साक्ष्य देकर उसकी आय 2,000/- रुपए प्रति दिन साबित की है । अधिकरण ने अंदाजा लगाने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि मृतक की कमाई 6,000/- रुपए प्रति मास थी । तथापि, अधिकरण ने उसके वैयक्तिक खर्चों के रूप में आय का एक तिहाई भाग कम करके गलती की है जबकि वस्तुतः किसी अविवाहित के मामले में कमी 50 प्रतिशत होनी चाहिए जैसाकि सरला वर्मा वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है । अधिकरण ने मामलें में गुणक लागू करने में भी गलती की है ।

9. मृतक और दावेदारों की आयु को ध्यान में रखते हुए मोटर यान अधिनियम, 1988 की परिशिष्ट अनुसूची का परिशीलन करने पर मामले में समुचित गुणक 12 लागू किया जाना चाहिए ।

10. अधिकरण ने अंतिम संस्कार के खर्चे के अधीन 10,000/- रुपए और संपदा की हानि के अधीन 10,000/- रुपए प्रदान करने में भी गलती की है । दावेदार वस्तुतः उक्त शीर्षकों के अधीन क्रमशः 2,000/- रुपए और 2,500/- रुपए के लिए हकदार हैं ।

11. तद्नुसार दावेदारों को दावा याचिका के फाइल करने की तारीख से अंतिम वसूली तक 6 प्रतिशत ब्याज सहित 3000x12x12+2000+2500=4,36,500/- रुपए के लिए हकदार होना अभिनिर्धारित किया जाता है ।

12. जमा की गई धनराशि पूर्णतया आक्षेपित अधिनिर्णय के साथ पठित इस आदेश के निबंधनों में दावेदारों को दी जाए । अतिरिक्त धनराशि यदि कोई हो, अपीलार्थी के पक्ष में खाता संदेय चैक के माध्यम से निर्मुक्त की जाए ।

13. तद्नुसार अपील निपटाई जाती है ।

अपील तद्नुसार निपटाई गई ।

मही./मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 670 **मध्य प्रदेश**

प्रेम चन्द और अन्य

बनाम

केशो राम और अन्य

तारीख 10 जनवरी, 2013

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित मध्य प्रदेश भू-राजस्व संहिता, 1969 की धारा 248] – द्वितीय अपील – वाद भूमि से उन्मूलन द्वारा बेदखली का वाद – प्रतिवादियों का लगभग 40 वर्षों से वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी दर्शित होना – दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों से सम्पुष्टि होना – यदि दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों से यह साबित कर दिया जाता है कि वाद भूमि पर प्रतिवादी लगभग 40 वर्षों से कब्जे सहित

स्वामी हैं तो वादी मात्र प्रतिकर की डिक्री पाने के ही हकदार हैं और ऐसे मामलों में उन्मूलन द्वारा कब्जे की डिक्री पारित करना असाम्यिक होगा ।

वर्तमान मामले में, अपीलार्थियों-वादियों ने प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों के विरुद्ध कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । वादियों के अनुसार मौजा फतेहपुर, तहसील पौंटा साहिब, जिला सिरमौर में स्थित खाता खतौनी सं. 13 मीन/25 मीन, खसरा सं. 150 माप 1-10 बीघा में समाविष्ट भूमि उनके द्वारा धारित है । दावाकृत भूमि, उनकी आबादी का एक भाग और भू-खंड है । वादियों ने यह दलील दी है कि वाद भूमि उनके गृहों से जुड़ी हुई है और इसका सामान्य प्रयोजनों के लिए उनके द्वारा प्रयोग की जाती है जैसे कि ढेर लगाने या संग्रह आदि करने के लिए । प्रतिवादियों का वाद भूमि में कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, उन्होंने वाद भूमि के एक भाग का अधिक्रमण कर लिया है और उस पर जुलाई, 1998 में एक छप्पर की झोपड़ी का निर्माण कर लिया है । उन्हें ऐसा नहीं करने के लिए निवेदन किया गया किन्तु उन्होंने उनका निवेदन मानने से इनकार कर दिया । उसके बाद वादियों ने तारीख 25 अक्तूबर, 1998 को फील्ड कानूनगो से वाद भूमि का सीमांकन करवाया है । वाद भूमि पर छप्पर की झोपड़ी पाई गई । तारीख 10 नवम्बर, 1998 को प्रतिवादियों ने वाद भूमि पर निर्माण सामग्रियां इकट्ठा करनी प्रारम्भ कर दीं । उन्होंने वाद भूमि में उत्खनन करना भी प्रारम्भ कर दिया । इन परिस्थितियों में यह वाद, छप्पर की झोपड़ी को नष्ट करते हुए और उस पर कोई अन्य निर्माण नहीं करने के लिए कब्जे की डिक्री के लिए फाइल किया गया । प्रतिवादियों द्वारा वाद का विरोध किया गया । उन्होंने इसमें के प्रख्यान से इनकार किया । छप्पर (झोपड़ी) का निर्माण जुलाई, 1998 में किया गया था । उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि निर्माण कार्य नवम्बर, 1998 में आरम्भ किया गया था । उनके अनुसार, कोई नया निर्माण नहीं किया गया है । उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि वाद भूमि, वादियों की आबादी का भाग और भू-खंड है । उनके अनुसार, उन्होंने वर्ष 1968 की बैशाखी के दिन भूमि के 0.4 बीघा पर गृह/छप्पर का निर्माण किया था और तभी से वे वाद सम्पत्ति का निरन्तर, शांतिपूर्ण तरीके से उपभोग कर रहे हैं और उन्हें उसकी जानकारी थी और इसलिए उनका कब्जा प्रतिकूल हो गया और उनका हक परिपक्व हो गया है । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी ने विवाद्यक विरचित किया । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी ने वाद खारिज कर दिया । वादियों ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश के समक्ष

एक अपील सं. 31/एन/13/2001 फाइल की । प्रतिवादियों ने भी प्रति-आक्षेप सं. 32/एन/13/2001 फाइल की । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने वादियों द्वारा प्रस्तुत अपील को इस सीमा तक भागतः मंजूर कर लिया कि वे फील्ड कानूनगो की रिपोर्ट प्रदर्श पी-3 से संबद्ध अक्श तितम्मा शजरा में खसरा सं. 150/2 द्वारा वर्णित 6 बिस्वा वाद भूमि के भाग के कब्जे का हकदार है । अक्श तितम्मा शजरा और फील्ड कानूनगो की रिपोर्ट, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित डिक्री के भाग रूप में आदेशित किए गए थे । प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत प्रति-आक्षेपों को खारिज कर दिया गया था । अतएव, यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा नियमित अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्ष 1958-59 की जमाबंदी के अनुसार, वादियों के हित-पूर्वाधिकारी, वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी थे । तथापि, वर्ष 1964-65 की जमाबंदी प्रदर्श पी. बी. के अनुसार गैर मुमकिन छप्पर खसरा सं. 150 पर मौजूद होना अर्थात् वादियों द्वारा स्वामित्व और कब्जे में दर्शित किया गया है । इसी प्रकार की प्रविष्टि पश्चात्वर्ती वर्ष 1969-70 की जमाबंदी प्रदर्श पी. सी., वर्ष 1974-75 की प्रदर्श पी. डी., वर्ष 1979-80 की प्रदर्श पी. ई. और वर्ष 1984-85 की प्रदर्श पी. एफ. में मौजूद है । वर्ष 1984-85 की जमाबंदी प्रदर्श पी. एफ. के अनुसार, मंगतू की मृत्यु हो गई थी और उसके हिस्से उसके पुत्रों प्रेम चन्द, चेत सिंह और मलेती राम को उत्तराधिकार में प्राप्त हो गई थी । सिंह लाल की भी मृत्यु हो गई थी और वाद भूमि में उसके हिस्से वादियों को उत्तराधिकार में प्राप्त हो गई थी । वर्ष 1989-90 की जमाबंदी में वाद भूमि को वादियों के स्वामित्व और कब्जे में गैर मुमकिन आबादी के रूप में दर्शित किया गया है । इस प्रविष्टि को वर्ष 1994-95 की जमाबंदी प्रदर्श पी. आई. और वर्ष 1999-2000 की जमाबंदी प्रदर्श पी. एच. में पुनः दोहराया गया है । इस प्रकार, राजस्व अभिलेखों के आधार पर यह सम्यक् रूप से साबित होता है कि छप्पर जुलाई, 1998 के पूर्व अस्तित्व में था । फील्ड कानूनगो द्वारा दिए गए सीमांकन रिपोर्ट प्रदर्श पी-3 के अनुसार प्रतिवादियों ने खसरा सं. 150 पर स्थित वाद भूमि का अधिक्रमण किया है । प्रतिवादियों ने कोई भी राजस्व अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया है । सीमांकन रिपोर्ट को भी प्रतिवादियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है । प्रतिवादी केशो राम ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उसका 4 बिस्वा भूमि पर आधिपत्य है । प्रतिवादियों द्वारा उद्भूत प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को दोनों निचले न्यायालयों द्वारा सही ही

नामंजूर किया है । चूंकि, प्रतिवादियों ने स्वयं ही वाद भूमि का स्वामी होने का दावा किया है, इसलिए, वे प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् नहीं ले सकते हैं । अभि. सा. 1 चेत राम के कथन के अनुसार भी, उसे छप्पर के निर्माण के बारे में प्रथम बार जानकारी सीमांकन के समय ही हुई थी । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी, फील्ड कानूनगो की रिपोर्ट प्रदर्श पी-3 से संबद्ध अक्श तितम्मा शजरा में खसरा सं. 150/2 के रूप में दर्शित वाद भूमि के भाग के ही कब्जे के हकदार हैं । छप्पर के नीचे की भूमि, अक्श तितम्मा शजरा द्वारा 4 बिस्वा है । वादियों को उनकी भूमि पर निर्मित छप्पर के बारे में जानकारी सीमांकन के समय पर ही हुई थी और इस प्रकार विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित यह निष्कर्ष कि वादियों ने वाद भूमि पर छप्पर का निर्माण करने की सहमति दी थी, उलटे जाने योग्य है । वर्णित तथ्यों से यह प्रकट होता है कि वादी निरन्तर रूप से वाद भूमि के खसरा सं. 150 पर 10 बिस्वा भूमि के कब्जे सहित स्वामी दर्शित किए गए हैं । इसमें उपर्युक्त चर्चा के अनुसार राजस्व अभिलेखों के अनुसार, छप्पर, वर्ष 1964-65 की जमाबंदी प्रदर्श पी. बी. में भी अस्तित्व में होना दर्शित था । इसके अलावा यह प्रविष्टियां वर्ष 1994-95 की प्रदर्श पी. आई. और वर्ष 1999-2000 की प्रदर्श पी. एच. तक थीं । साक्ष्यों के अनुसार, प्रतिवादी भी छप्पर में रहते थे, जैसा कि प्रतिवादी साक्षी 1 केशो राम और प्रतिवादी साक्षी 2 बहादुर सिंह के कथनों में है । सामान्य परिस्थितियों में, जब एक बार वादियों को वाद भूमि के स्वामी के रूप में पाया जाता है तो छप्पर के उन्मूलन द्वारा कब्जे की डिक्री मंजूर की जा सकती है । तथापि, इस मामले में चूंकि निर्माण पिछले लगभग 40 वर्षों से अधिक पूर्व किए गए थे इसलिए उन्मूलन द्वारा कब्जे की डिक्री असाम्यिक होगी । वादियों ने प्रतिवादियों को निर्माण करने की उपमति नहीं दी थी । चूंकि, प्रतिवादी झोपड़ी में रह रहे हैं इसलिए, उन्मूलन द्वारा कब्जे की डिक्री पारित करना असाम्यिक होगा और साम्या के संतुलन के अनुसार वादी प्रतिकर की डिक्री पाने के हकदार हैं । चूंकि, भूमि आबादी में स्थित है इसलिए, इसका मूल्य 2.5 लाख रुपए से कम नहीं होगी । (पैरा 14, 15, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1969]	ए. आई. आर. 1969 पटना 64 : **श्रीनिवास फोग्ला और अन्य** बनाम **सत्यानन्द गुप्ता और अन्य ;**	19

[1957] ए. आई. आर. 1957 पटना 308 :
डा. अब्दुल खैर बनाम **मिस शैला मिर्तला जैम्स और एक अन्य** । 18

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002-ई की नियमित द्वितीय अपील सं. 390.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन नियमित द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री के. एस. कनवर, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सुश्री अर्चना दत्त के स्थान पर श्री विक्रांत चन्देल

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, सिरमौर, जिला नाहन द्वारा 2001 की सिविल प्रक्रिया संहिता, 31-एन/13 में पारित तारीख 28 मई, 2002 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निदेशित है ।

2. इस नियमित द्वितीय अपील के न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक तथ्य यह हैं कि अपीलार्थियों-वादियों (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'वादियों' कहा गया है) ने प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'प्रतिवादियों' कहा गया है) के विरुद्ध कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । वादियों के अनुसार मौजा फतेहपुर, तहसील पौंटा साहिब, जिला सिरमौर में स्थित खाता खतौनी सं. 13 मीन/25 मीन, खसरा सं. 150 माप 1-10 बीघा में समाविष्ट भूमि (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'वाद भूमि' कहा गया है) उनके द्वारा धारित है । दावाकृत भूमि, उनकी आबादी का एक भाग और भू-खंड है । वादियों ने यह दलील दी है कि वाद भूमि उनके गृहों से जुड़ी हुई है और इसका सामान्य प्रयोजनों के लिए उनके द्वारा प्रयोग की जाती है जैसे कि ढेर लगाने या संग्रह आदि करने के लिए । प्रतिवादियों का वाद भूमि में कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, उन्होंने वाद भूमि के एक भाग का अधिक्रमण कर लिया है और उस पर जुलाई, 1998 में एक छप्पर की झोपड़ी का निर्माण कर लिया है । उन्हें ऐसा नहीं करने के लिए निवेदन किया गया किन्तु उन्होंने उनका निवेदन मानने से इनकार कर दिया । उसके बाद वादियों ने तारीख 25 अक्तूबर, 1998 को फील्ड कानूनगो से वाद भूमि का सीमांकन करवाया है । वाद भूमि पर छप्पर की

झोपड़ी पाई गई । तारीख 10 नवम्बर, 1998 को प्रतिवादियों ने वाद भूमि पर निर्माण सामग्रियां इकट्ठा करनी प्रारम्भ कर दीं । उन्होंने वाद भूमि में उत्खनन करना भी प्रारम्भ कर दिया । इन परिस्थितियों में यह वाद, छप्पर की झोपड़ी को नष्ट करते हुए और उस पर कोई अन्य निर्माण नहीं करने के लिए कब्जे की डिक्री के लिए फाइल किया गया ।

3. प्रतिवादियों द्वारा वाद का विरोध किया गया । उन्होंने इसमें के प्रख्यान से इनकार किया । छप्पर (झोपड़ी) का निर्माण जुलाई, 1998 में किया गया था । उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि निर्माण कार्य नवम्बर, 1998 में आरम्भ किया गया था । उनके अनुसार, कोई नया निर्माण नहीं किया गया है । उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि वाद भूमि, वादियों की आबादी का भाग और भू-खंड है । उनके अनुसार, उन्होंने वर्ष 1968 की बैशाखी के दिन भूमि के 0.4 बीघा पर गृह/छप्पर का निर्माण किया था और तभी से वे वाद सम्पत्ति का निरन्तर, शांतिपूर्ण तरीके से उपभोग कर रहे हैं और उन्हें उसकी जानकारी थी और इसलिए उनका कब्जा प्रतिकूल हो गया और उनका हक परिपक्व हो गया है ।

4. विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी ने विवाद्यक विरचित किया । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी ने वाद खारिज कर दिया । विद्वान् उप-न्यायाधीश के निर्णय का प्रवर्तनीय भाग निम्नलिखित है :–

> "12. पूर्वोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि यद्यपि वादियों का वाद भूमि के ऊपर हक है फिर भी सम्पूर्ण वाद भूमि पर कब्जे के लिए उनका वाद असफल होना चाहिए और तथापि, प्रतिवादियों के छप्पर के नीचे के क्षेत्र के कब्जे के लिए डिक्री पारित नहीं की जा सकती है क्योंकि वादी तितम्मा द्वारा उसके परिमाप को साबित करने में असफल रहे हैं । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि प्रतिवादियों के पक्ष में वाद भूमि में से 0-4 बिस्वा भूमि पर प्रतिकूल कब्जे को अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है जैसा कि उनके द्वारा दावा किया गया है । इस प्रकार, दोनों विवाद्यक सं. 1 और 2 का उत्तर नकारात्मक दिया जाता है ।"

5. वादियों ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश के समक्ष एक अपील सं. 31/एन/13/2001 फाइल की । प्रतिवादियों ने भी प्रति-आक्षेप सं. 32/एन/13/2001 फाइल की । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने वादियों द्वारा प्रस्तुत अपील को इस सीमा तक भागतः मंजूर कर लिया कि वे

फील्ड कानूनगो की रिपोर्ट प्रदर्श पी-3 से संबद्ध अक्श तितम्मा शजरा में खसरा सं. 150/2 द्वारा वर्णित 6 बिस्वा वाद भूमि के भाग के कब्जे का हकदार है । अक्श तितम्मा शजरा और फील्ड कानूनगो की रिपोर्ट, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित डिक्री के भाग रूप में आदेशित किए गए थे । प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत प्रति-आक्षेपों को खारिज कर दिया गया था । अतएव, यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई । इसे निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्नों पर स्वीकृत किया गया था :–

> "1. क्या विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने वादियों को वाद भूमि के बारे में सम्पूर्ण भूमि के कब्जे के लिए वाद की डिक्री नहीं करने में विधिक त्रुटि कारित की है जबकि वादियों ने वाद भूमि पर अपना हक साबित कर दिया है और प्रतिवादियों द्वारा वाद भूमि में से चार बिस्वा भूमि के ऊपर प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने उनके पक्ष में नहीं पाया था ?
>
> 2. क्या विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने प्रतिवादियों की ओर से सहमति के किसी अभिवाक् के बिना और उस प्रभाव के किसी विवाद्यक के वाद भूमि में से चार बिस्वा भूमि तक वादियों के कब्जे का अनुतोष देने से इनकार करने में त्रुटि कारित की है जिसे सहमति के सिद्धांत को लागू करते हुए उस पर बनाए गए निर्माण को नष्ट कर दिया गया था ?
>
> 3. क्या विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने अभिलेख पर की सामग्रियों का गलत अर्थान्वयन, गलत निर्वचन और दुष्प्रयुक्त किया है और उसके द्वारा अपनाया गया मत अभिलेख पर की सामग्रियों के आधार पर संभाव्य नहीं है ?"

6. श्री करन सिंह कनवर ने यह जोरदार तर्क दिया कि विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकालने में विधि की त्रुटि कारित की है कि वादी अक्श तितम्मा शजरा खसरा सं. 150/1 में की चार बिस्वा भूमि के कब्जे के हकदार नहीं हैं । उनके अनुसार, वादियों ने सम्यक् रूप से यह साबित कर दिया है कि वे मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्य के अनुसार वाद भूमि के स्वामी हैं । दूसरे शब्दों में, उनका निवेदन यह है कि वाद की इसकी सम्पूर्णता में डिक्री की जानी चाहिए थी । उन्होंने यह भी दलील दी कि अपर जिला न्यायाधीश ने यह गलत निष्कर्ष निकाला है कि वादियों ने वाद भूमि पर प्रतिवादियों को निर्माण करने की सहमति दी थी, विशिष्टतया

तब जब प्रतिवादियों द्वारा उद्भूत प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को निचले न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है । वैकल्पिक रूप में, उन्होंने यह प्रार्थना की कि यदि प्रतिवादियों को झोपड़ी से बेकब्जा नहीं किया जाता है तो वादियों के पक्ष में प्रतिकर के लिए डिक्री पारित की जा सकती है ।

7. श्री विक्रांत चंदेल ने यह तर्क दिया कि विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा सिविल अपील सं. 31/एन/13/2001 में पारित निर्णय और डिक्री अपास्त की जा सकती है । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने इस प्रभाव का भागतः वाद डिक्री करने में विधि की त्रुटि कारित की है कि वादी वाद भूमि में से फील्ड कानूनगो की रिपोर्ट प्रदर्श पी-3 में संबद्ध अक्श तितम्मा शजरा खसरा सं. 150/2 में दर्शित 6 बिस्वा भूमि के कब्जे के हकदार हैं ।

8. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और ध्यानपूर्वक अभिलेखों का परिशीलन किया ।

9. चूंकि, सभी विधि के सारवान् प्रश्न एक दूसरे से संबद्ध और जुड़े हुए हैं, इसलिए, साक्ष्य की चर्चा की पुनरावृत्ति से बचने के लिए इन्हें अवधारित करने के लिए एक साथ लिया जाता है ।

10. अभि. सा. 1 चेत राम के अनुसार, सम्पूर्ण वाद भूमि खसरा सं. 150 में से 10 बिस्वा है । वे वाद भूमि के स्वामी थे । प्रतिवादियों का वाद भूमि के ऊपर कोई अधिकार नहीं है । वे वाद भूमि का प्रयोग कूड़ा डालने और पशुओं को बांधने के लिए करते थे । तारीख 15 जुलाई, 1998 को प्रतिवादियों ने वाद भूमि पर एक छोटे छप्पर का निर्माण कर लिया और वहां अपनी सम्पत्तियां रख दीं । उन्होंने दो कमरों का निर्माण करना आरम्भ कर दिया था । हम लोगों ने उन्हें ऐसा करने से मना किया । भूमि का सीमांकन कराया गया और प्रतिवादियों से उन्हें खाली करने के लिए निवेदन किया गया । इसके पश्चात्, प्रतिवादियों ने भी तारीख 10 नवम्बर, 1998 को वाद भूमि को ईंटों से घेर लिया । अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि प्रथम बार, उन्हें जुलाई, 1998 में यह जानकारी हुई कि प्रतिवादियों ने वाद भूमि पर छप्पर का निर्माण कर लिया है । सीमांकन की तारीख पर नम्बरदार राम प्रसाद, प्रधान रणबीर सिंह आदि मौजूद थे । उसने इस सुझाव से इनकार किया कि प्रतिवादी ने वर्ष 1968 में ही छप्पर का निर्माण कर लिया था । अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने यह स्वीकार किया कि छप्पर आवासीय प्रकृति के थे और प्रतिवादी उसमें रह रहे थे ।

11. अभि. सा. 2 नेरतू राम ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसे वाद भूमि के बारे में जानकारी थी । उसकी माप 10 बिस्वा है । वादी, वाद भूमि के स्वामी हैं । प्रतिवादियों का 10 बिस्वा भूमि पर कोई अधिकार नहीं है । प्रतिवादियों ने वर्ष 1998 में वाद भूमि पर छप्पर का निर्माण किया । वर्ष 1998 के पूर्व वाद भूमि, वादियों के कब्जे में थी । इसके पश्चात् यह स्वतः प्रवृत्त है कि यह प्रतिवादियों के कब्जे में रही । प्रतिपरीक्षा में, उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि छप्पर का निर्माण अपराह्न 6-7 बजे रात्रि में किया गया था ।

12. प्रतिवादी साक्षी 1 केशो राम ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने बैशाखी के दिन आवासीय छप्पर का निर्माण किया । उसके अनुसार, वह खुले तौर पर वाद भूमि के कब्जे में था और सम्पूर्ण ग्रामवासी इससे अवगत थे । वादियों ने उसके कब्जे पर कभी भी कोई आक्षेप नहीं किया । छप्पर की परिमाप 24-25 फीट लम्बाई में और 14-15 फीट चौड़ाई में है । उसने यह स्वीकार किया कि उसके अधिभोग में 4 बिस्वा भूमि है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि वाद भूमि वर्ष 1968 में वादियों द्वारा धारित थी । उसने यह भी परिसाक्ष्य दिया कि वादी 10 बिस्वा भूमि के स्वामी हैं । यह स्वतः प्रवृत्त है कि वह 4 बिस्वा भूमि के कब्जे में हैं । उसने यह भी स्वीकार किया कि यद्यपि पटवारी ने गांव का दौरा किया था किन्तु उसने गिरदावरी में राजस्व अभिलेखों में कोई प्रविष्टि नहीं करवाया । उसने गिरदावरी में प्रविष्टि कराने के लिए तहसील के समक्ष कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उसका कुटुम्ब छप्पर में रह रहा है और वाद भूमि से सटे निर्मित पक्के गृह में वह घास इत्यादि इकट्ठा करता है और उसके पुत्र उसमें रहते हैं । उसने इस सुझाव से इनकार किया कि उसने वर्ष 1998 में शेड का निर्माण किया है ।

13. प्रतिवादी साक्षी 2 बहादुर सिंह ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि प्रतिवादी ने 4 बिस्वा भूमि अधिभोग में लिया है । वहां पर उसने छप्पर और अन्य निर्माण भी किया है । प्रतिवादियों ने वर्ष 1968 में बैशाखी के दिन छप्पर का निर्माण किया । वह उसमें रह रहा है । वर्ष 1968 से उसका खुला कब्जा है । सम्पूर्ण ग्रामवासी इस तथ्य को जानते हैं ।

14. वर्ष 1958-59 की जमाबंदी के अनुसार, वादियों के हित-पूर्वाधिकारी, वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी थे । तथापि, वर्ष 1964-65 की जमाबंदी प्रदर्श पी. बी. के अनुसार गैर मुमकिन छप्पर खसरा सं. 150 पर मौजूद होना अर्थात् वादियों द्वारा स्वामित्व और कब्जे में दर्शित किया

गया है । इसी प्रकार की प्रविष्टि पश्चात्वर्ती वर्ष 1969-70 की जमाबंदी प्रदर्श पी. सी., वर्ष 1974-75 की प्रदर्श पी. डी., वर्ष 1979-80 की प्रदर्श पी. ई. और वर्ष 1984-85 की प्रदर्श पी. एफ. में मौजूद है । वर्ष 1984-85 की जमाबंदी प्रदर्श पी. एफ. के अनुसार, मंगतू की मृत्यु हो गई थी और उसके हिस्से उसके पुत्रों प्रेम चन्द, चेत सिंह और मलेती राम को उत्तराधिकार में प्राप्त हो गई थी । सिंह लाल की भी मृत्यु हो गई थी और वाद भूमि में उसके हिस्से वादियों को उत्तराधिकार में प्राप्त हो गई थी । वर्ष 1989-90 की जमाबंदी में वाद भूमि को वादियों के स्वामित्व और कब्जे में गैर मुमकिन आबादी के रूप में दर्शित किया गया है । इस प्रविष्टि को वर्ष 1994-95 की जमाबंदी प्रदर्श पी. आई. और वर्ष 1999-2000 की जमाबंदी प्रदर्श पी. एच. में पुनः दोहराया गया है । इस प्रकार, राजस्व अभिलेखों के आधार पर यह सम्यक् रूप से साबित होता है कि छप्पर जुलाई, 1998 के पूर्व अस्तित्व में था । फील्ड कानूनगो द्वारा दिए गए सीमांकन रिपोर्ट प्रदर्श पी-3 के अनुसार प्रतिवादियों ने खसरा सं. 150 पर स्थित वाद भूमि का अधिक्रमण किया है । प्रतिवादियों ने कोई भी राजस्व अभिलेख प्रस्तुत नहीं किया है । सीमांकन रिपोर्ट को भी प्रतिवादियों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है । सीमांकन रिपोर्ट प्रदर्श पी-3 का सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

> "सीमांकन पर यह पाया गया कि रति राम (वादियों में से एक) और केशो राम (प्रतिवादियों में से एक) के बीच विवाद्यक खसरा सं. 150 और 269/151 के सामान्य छोर पर है जिसे अक्श तितम्मा में डी. एफ. रेखा द्वारा चित्रित किया गया है । प्रत्यर्थी केशो राम ने अपने स्वामित्वाधीन खसरा सं. 150/1 के 18 करम छोर तक के क्षेत्र पर कब्जा किया है जबकि घटनास्थल पर सीमांकन के अनुसार यह क्षेत्र खसरा सं. 150 में आता है, जिस पर, राजस्व अभिलेखों के अनुसार रति राम का स्वामित्व और कब्जा है ।"

15. प्रतिवादी केशो राम ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उसका 4 बिस्वा भूमि पर आधिपत्य है । प्रतिवादियों द्वारा उद्भूत प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को दोनों निचले न्यायालयों द्वारा सही ही नामंजूर किया है ।

16. चूंकि, प्रतिवादियों ने स्वयं ही वाद भूमि का स्वामी होने का दावा किया है, इसलिए, वे प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् नहीं ले सकते हैं । अभि. सा. 1 चेत राम के कथन के अनुसार भी, उसे छप्पर के निर्माण के बारे में प्रथम बार जानकारी सीमांकन के समय ही हुई थी । विद्वान् अपर

जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी, फील्ड कानूनगो की रिपोर्ट प्रदर्श पी-3 से संबद्ध अक्श तितम्मा शजरा में खसरा सं. 150/2 के रूप में दर्शित वाद भूमि के भाग के ही कब्जे के हकदार हैं । छप्पर के नीचे की भूमि, अक्श तितम्मा शजरा द्वारा 4 बिस्वा है । वादियों को उनकी भूमि पर निर्मित छप्पर के बारे में जानकारी सीमांकन के समय पर ही हुई थी और इस प्रकार विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित यह निष्कर्ष कि वादियों ने वाद भूमि पर छप्पर का निर्माण करने की सहमति दी थी, उलटे जाने योग्य है ।

17. वर्णित तथ्यों से यह प्रकट होता है कि वादी निरन्तर रूप से वाद भूमि के खसरा सं. 150 पर 10 बिस्वा भूमि के कब्जे सहित स्वामी दर्शित किए गए हैं । इसमें उपर्युक्त चर्चा के अनुसार राजस्व अभिलेखों के अनुसार, छप्पर, वर्ष 1964-65 की जमाबंदी प्रदर्श पी. बी. में भी अस्तित्व में होना दर्शित था । इसके अलावा यह प्रविष्टियां वर्ष 1994-95 की प्रदर्श पी. आई. और वर्ष 1999-2000 की प्रदर्श पी. एच. तक थीं । साक्ष्यों के अनुसार, प्रतिवादी भी छप्पर में रहते थे, जैसा कि प्रतिवादी साक्षी 1 केशो राम और प्रतिवादी साक्षी 2 बहादुर सिंह के कथनों में है । सामान्य परिस्थितियों में, जब एक बार वादियों को वाद भूमि के स्वामी के रूप में पाया जाता है तो छप्पर के उन्मूलन द्वारा कब्जे की डिक्री मंजूर की जा सकती है । तथापि, इस मामले में चूंकि निर्माण पिछले लगभग 40 वर्षों से अधिक पूर्व किए गए थे इसलिए उन्मूलन द्वारा कब्जे की डिक्री असाम्यिक होगी । वादियों ने प्रतिवादियों को निर्माण करने की उपमति नहीं दी थी । चूंकि, प्रतिवादी झोपड़ी में रह रहे हैं इसलिए, उन्मूलन द्वारा कब्जे की डिक्री पारित करना असाम्यिक होगा और साम्या के संतुलन के अनुसार वादी प्रतिकर की डिक्री पाने के हकदार हैं । चूंकि, भूमि आबादी में स्थित है इसलिए, इसका मूल्य 2.5 लाख रुपए से कम नहीं होगी ।

18. **डा. अब्दुल खैर** बनाम **मिस शैला मिर्तला जैम्स और एक अन्य**[1] वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा उपमति या अधित्यजन के बारे में सूक्ष्म तरीके से स्पष्ट किया गया । खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि वहां उपमति या अधित्यजन नहीं हो सकता है, यदि जहां दोनों पक्षकार विवादित सम्पत्ति में अपने अधिकारों से अनभिज्ञ

---

[1] ए. आई. आर. 1957 पटना 308.

होते हैं । खंड न्यायपीठ ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि साधारणतया यह भी कह सकते हैं कि यदि एक पक्षकार होने वाले कार्य को रोकने में रुचि रखता है तो वह इसकी पूर्ण जानकारी पर ऐसा कर सकता है और इस प्रकार, इसमें उपमति यह युक्तियुक्त विश्वास दिला सकती है कि उसने इसकी सहमति दी है और अन्यों की स्थिति उसकी गंभीरता को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन करने की होती है, वह अपने प्रतिकूल कार्य को चुनौती देने का अधिक अधिकार नहीं रखता है यदि उसकी पूर्व अनुज्ञा द्वारा ऐसा कार्य किया जाता है । इस मामले में, वादी और प्रतिवादी भू-खंड के स्वामी हैं । अपने गृहों का निर्माण करने में प्रतिवादियों ने वादी की भूमि पर अतिक्रमण किया है । दोनों में से कोई भी पक्षकार अधिक्रमित भूमि के बारे में क्रमशः अपने अधिकारों को नहीं जानते थे और दोनों ही पक्षकार उक्त भूमि में क्रमशः अपने अधिकारों के बारे में कुछ भूल के अधीन कार्य कर रहे थे । यह मात्र तब जब प्रतिवादी कई महीनों से निर्माण कार्य कर रहे थे और जब दोनों पक्षकारों के बीच सीमा विवाद उद्भूत हुआ और जब वादी ने भूमि की माप कराई तब उसे यह बताया गया कि वह भाग जिसपर प्रतिवादी भवन का निर्माण कर रहे हैं वह उसकी है और इसके तत्काल पश्चात् उसने एक वाद फाइल किया । खंड न्यायपीठ ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि न तो प्रतिवादियों के पक्ष में कोई साम्या उद्भूत होती है न ही उनके पक्ष में कोई साम्यिक अधिकार उद्भूत होते हैं जिससे वादी को उसकी भूमि के अधिक्रमित भाग पर भवन निर्माण से रोकने के लिए प्रतिवादियों के विरुद्ध उन्मूलन द्वारा कब्जे का दावा करने से रोका जा सके । खंड न्यायपीठ ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि जहां प्रतिवादियों ने वादी की भूमि पर भवन निर्माण करते हुए अधिक्रमण किया है और वादी की ओर से कोई उपमति सिद्ध नहीं हुई है तो बेदखली के बदले में प्रतिकर की डिक्री पारित करना विधि के प्रतिकूल है । खंड न्यायपीठ ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "9. इस प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए कि क्या अपील न्यायालय का यह निष्कर्ष कि दोनों पक्षकार भूमि के अतिक्रमित भाग के बारे में क्रमशः अपने अधिकारों के बारे में कुछ भूल के अधीन कार्य किए थे जिससे विधि में उपमति साबित होती है, इसलिए, सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि उपमति या अधित्यजन के नियम के अधोलिखित सिद्धांत क्या हैं ।
>
> यह सुस्थिर है कि एक पक्षकार दूसरे के दावों के प्रति सहमति

नहीं दे सकता है जब तक कि वे उनसे विवाद के बारे में अपने अधिकारों की पूरी जानकारी नहीं रखता है और यह कि जहां उपमति का अवलंब लिया जाता है वहां यह दर्शित किया जाना चाहिए कि उपमति देने वाला व्यक्ति उस मामले को जानता है जिसमें उसने सहमति दी है और ऐसी उपमति के प्रभाव को भी जानता है । मान्यता यह है कि 'अधित्यजन, जानकारी के साथ सआशय कार्य होना चाहिए' [देखें : भोनू लाल चौधरी **बनाम** डब्ल्यू. ए. विसेन्ट, ए. आई. आर. 1922 पटना 619 (एफ. बी.) ए.(ए.)] । इस सिद्धांत को पुनः प्रमिला देवी **बनाम** पीपुल्स बैंक आफ नार्दन इंडिया लिमिटेड [ए. आई. आर. 1938 पी. सी. 284 (बी.)] वाले मामले में न्यायिक समिति के विनिश्चय द्वारा मजबूत किया गया जिसका अनुसरण, स्पैकमैन **बनाम** ईवान्स (1868) 3 एच. एल. 171 (सी.) और ट्रवाइन **बनाम** द यूनियन बैंक आफ आस्ट्रेलिया (1877) 2 ए. सी. 366 (डी.) वाले मामलों में भी किया गया । लार्ड रोमर ने बोर्ड का निर्णय देते हुए यह मत व्यक्त किया कि –

> 'अनुसमर्थन करने के आशय के बिना अनुसमर्थन नहीं हो सकता है और अवैधता की जानकारी के बिना अवैध कार्य का अनुसमर्थन बिना आशय के नहीं हो सकता है ।'

विद्वान् लार्ड ने लार्ड चेम्सफोर्ड द्वारा स्पैकमैन **बनाम** ईवान्स (1868) 3 एच. एल. 171 (सी.) वाले मामले में व्यक्त मत का अनुमोदन करते हुए निम्नलिखित उद्धृत किया –

> 'एक कम्पनी के निदेशकों का वैध कार्य जिसे अधिकारातीत घोषित किया गया, शेयरधारकों की उपमति उसी सीमा तक होनी चाहिए जिससे प्रथम प्रारूप में ही उसे वैद्यता प्रदान की जा सके अर्थात् कम्पनी के प्रत्येक सदस्य की उपमति होनी चाहिए । निःसंदेह, इस उपमति की उपधारणा तब तक नहीं की जा सकती है जब तक कि संव्यवहार की जानकारी शेष बचे सभी शेयरधारकों को नहीं हो जाती है ।'

संव्यवहार की जानकारी का स्पष्टतः अभिप्राय संव्यवहार की अवैधता की जानकारी होना है । इसलिए, उपर्युक्त मामले में अधिकथित सिद्धांत से यह स्पष्ट होता है कि वहां उपमति या त्यजन नहीं हो सकता है यदि जहां दोनों पक्षकार विवादित सम्पत्ति में अपने

अधिकारों से अनभिज्ञ हैं । दोनों ही पक्षकार ऐसी भूमि के बारे में क्रमशः अपने अधिकारों के बारे में कुछ भूल के अधीन कार्य किए हैं ।

जब तक दोनों पक्षकार विवादित सम्पत्ति में अपने अधिकारों की पूर्णतया जानकारी नहीं रखते हैं तब तक पक्षकार को अन्य के दावों के बारे में उपमति देना नहीं कहा जा सकता है । इसलिए, जहां उपमति का अवलंब लिया जाता है, वहां यह दर्शित किया जाना चाहिए कि उपमति देने वाला व्यक्ति उस मामले को जानता था जिसमें उसने उपमति दी है और ऐसी उपमति के प्रभाव के बारे में भी जानता था । इसलिए, निष्कर्षों के आधार पर इस मामले में मेरा निर्णय यह है कि वादी की ओर से कोई उपमति या त्यजन नहीं हो सकता है ।

11. डा. अब्दुल खैर **बनाम** मिस शैला मिर्तला जैम्स और एक अन्य [ए. आई. आर. 1957 पटना 308 (एफ.)] वाले मामले में भी इस न्यायपीठ द्वारा 'भवन साम्या' क्या है, के प्रश्न पर विचार किया गया । माननीय मुख्य न्यायाधीश ने, जिन्होंने न्यायालय का निर्णय दिया और जिनसे मैं भी सहमत हूं, बिहार और उड़ीसा नगरपालिका अधिनियम (1922 का VII) की धारा 191 के प्रभाव पर विचार करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया –

> 'इस धारा में, प्लीमर **बनाम** वेलिंग्टन कार्पोरेशन [(1884) 9 ए. सी. 699 (जी.)] वाले मामले में अधिकथित साम्यिक सिद्धांत के समरूप ही सिद्धांत अधिकथित किया गया है जो यद्यपि एक समान नहीं हैं जिनका मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूं, तारीख 2 फरवरी, 1955 की मंजूरी कतिपय पहलुओं में अवैध हो सकती है किन्तु पटना शहर नगरपालिका या पटना नगरपालिका निगम को भवन का निर्माण आरम्भ होने के पश्चात् इन आदेशों को अभिखंडित करने का कोई अधिकार नहीं है । प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में साम्यिक अधिकारों का उद्भूत होने का कारण है और उसे पटना नगर निगम या पटना शहर नगरपालिका की ओर से उसके विरुद्ध की गई कार्रवाई से कानूनी संरक्षण प्राप्त है ।'

मेरी राय में, प्रतिवादियों के पक्ष में ऐसी कोई साम्या उद्भूत नहीं होता है, और न ही उनके पक्ष में कोई साम्यिक अधिकार उद्भूत होते हैं जिससे वे मामले की परिस्थितियों में वादी को अपनी भूमि

के अतिक्रमित भाग पर भवन के उन्मूलन द्वारा कब्जे का दावा करने से रोक सके । प्रतिवादियों के पक्ष में ऐसी साम्या उद्भूत करने के लिए, रामदेन **बनाम** डाइसन [(ई.) (1965) एल. आर. 1 एच. एल. 129] वाले मामले में अधिकथित दोनों शर्तों को सिद्ध किया जाना चाहिए किन्तु वर्तमान मामले में दोनों शर्तों में से कोई भी शर्त नहीं है जो साथ-साथ मौजूद हैं । क्योंकि निचले अपील न्यायालय के निष्कर्षों के आधार पर पक्षकारों में से कोई भी पक्षकार अधिक्रमणित भूमि के बारे में क्रमशः अपने अधिकारों को नहीं जानते हैं और दोनों ही पक्षकार उक्त भूमि में क्रमशः अपने अधिकारों के बारे में कुछ भूल के अधीन कार्य किए थे । मात्र तब जब प्रतिवादियों ने कतिपय महीनों तक कार्य जारी रखा और जब पक्षकारों के बीच सीमा विवाद उद्भूत हुआ और जब वादी ने उस भूमि की माप करवाई तब उसे बताया गया कि जिस भाग पर वादी भवन का निर्माण कर रहे हैं वह भाग उसका है और इसके तत्काल पश्चात् उसने इस भाग पर कब्जे के लिए वाद फाइल किया ।

अधिक्रमणित भाग को वापस लेने का वादी का अधिकार उसके स्वामित्व से उद्भूत होता है । यह सुस्थिर है कि यदि एक पर-व्यक्ति दूसरे अन्य व्यक्ति की भूमि पर भवन निर्माण करता है, यह विश्वास करते हुए कि वह भूमि अपनी है तो स्वामी उस भूमि को वापस पाने का हकदार है और उस पक्षकार को जिसने अन्य की भूमि पर भवन निर्माण कर लिया है उसे भवन का उन्मूलन करना होगा जब तक कि उसे ऐसा भवन निर्माण करने वाली विशेष परिस्थिति मौजूद न हो जिससे कि यह विश्वास किया जा सके कि स्वामी का आशय उस भूमि के बारे में अपना अधिकार छोड़ देना था या उस भूमि पर भवन निर्माण करने की उपमति देना था । वर्तमान मामले में, ऐसी कोई विशेष परिस्थिति मौजूद होना नहीं पाई गई है ।

इसलिए, मेरी राय में, क्योंकि उपमति या अधित्यजन का कोई निष्कर्ष नहीं निकलता है जैसा कि निचले अपील न्यायालय का यह निष्कर्ष था कि दोनों पक्षकार भूमि के अधिक्रमणित भाग पर क्रमशः अपने अधिकारों के बारे में कुछ भूल के अधीन कार्य किया था, इसलिए, वादी, अधिक्रमणित भाग पर खड़े भवन के उन्मूलन द्वारा अधिक्रमणित भूमि का खाली कब्जा पाने के दावे से विबंधित नहीं है ।

12(क). विबंधन, साक्ष्य का एक नियम है और इस साधारण

नियम को, साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 115 में अधिनियमित किया गया है । यह आचरण द्वारा विबंधन का नियम है जैसा कि अभिलेखों से प्रकट होता है जो प्राग-न्याय का वर्जन गठित करता है । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 115 में समाविष्ट विबंधन का नियम, लार्ड शेड द्वारा शरत चुनर डे **बनाम** गोपाल चुन्दर लाला [19 इंडिया अपील 203, पृष्ठ 215 (एच.)] वाले मामले में दिए गए निर्णय से समाविष्ट किया गया है, जिसे विस्तार से उद्धृत किया जा सकता है । इस सिद्धांत का अनुसरण सर एल. ई. राली ने नाथू लाल **बनाम** रघुवीर सिंह और अन्य [52 इंडिया अपील 178 = ए. आई. आर. 1925 पी. सी. 146 (जे.)] वाले मामले में किया गया जिसमें न्यायिक समिति के माननीय न्यायाधीशों ने लार्ड शेड द्वारा अधिकथित सिद्धांतों से पूर्ण सहमति व्यक्त करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया –

> 'इस देश की विधि इस सिद्धांत का अनुमोदन नहीं करता है कि विबंधन गठित करने लिए एक व्यक्ति जिसके कार्य या घोषणा द्वारा दूसरा व्यक्ति विशिष्ट तरीके से कार्य करने को प्रेरित होता है उसे स्वयं किसी भूल के अधीन नहीं होना चाहिए या उसे भ्रामक या प्रवंचना करने के आशय से कार्य करना चाहिए । विधि और भारतीय संविधि मुख्यतया उस व्यक्ति की प्रास्थिति के बारे में स्पष्ट करता है जिसे कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है और जिस विधि और संविधि पर सिद्धांत निर्भर करता है, वह यह है कि यह उसके प्रति अत्यधिक असाम्यिक और अनुचित होगा, यदि अन्य व्यक्ति अभ्यावेदन द्वारा या अभ्यावेदन की कोटि में आने वाले आचरण द्वारा उसे इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह अन्यथा ऐसा नहीं करता यदि वह व्यक्ति जिसने अभ्यावेदन किया है, को अपने पूर्ववर्ती कथन के प्रभाव से इनकार या खंडन करना मंजूर किया जाता जिससे उस व्यक्ति को हानि या क्षति हुई होती है जिसने उस पर कार्य किया है ।
>
> यदि एक व्यक्ति जो इस प्रकार की बिना पूर्ण जानकारी के या त्रुटि के अधीन, तुच्छ बातों पर कोई कथन करता है । यह उसके लिए दुर्भाग्यपूर्ण हो सकता है किन्तु यह अन्यायपूर्ण होगा, यदि इस त्रुटि के अधीन कार्य करते हुए वह व्यक्ति

जिसने उसके कथन पर विश्वास किया है और इस पर कार्य किया है जैसा कि आशयित था कि उसे करना चाहिए था ।'

यह सिद्धांत वहां लागू होगा जहां यदि एक व्यक्ति या तो शब्दों द्वारा या आचरण द्वारा यह इंगित करता है कि उसने उस कार्य के प्रति सहमति दी है जिसे किया गया है और यह कि उसे इस पर कोई आपत्ति नहीं है तो यद्यपि वह कार्य उसकी सहमति के बिना वैधपूर्ण तरीके से नहीं किया गया है और वह तद्द्वारा ऐसा करने के लिए अन्यों को उत्प्रेरित करता है जिसे वे अन्यथा करने से परहेज करते तो वह उस कार्य की वैधता पर प्रश्न नहीं उठा सकता है जिसे उसने इस प्रकार मंजूरी दी है जो उसके प्रतिकूल हो सकता है जिसे उसने अपने शब्दों से विश्वास दिलाया है या अपने आचरण से ऐसा ऋजु निष्कर्ष निकालने दिया है ।

इस प्रकार, विद्वान् चांसलर (लार्ड कैम्पबेल) द्वारा कथित इस साधारण सिद्धांत से लार्ड किंग्सडाउन ने केयर्नक्रास **बनाम** लोरिमर [(1860) 3 एम. ए. सी. क्यू. 827 पृष्ठ 829 (के.)] वाले मामले में पूर्ण सहमति जताई जिसे लार्ड शेड द्वारा शरत चन्दर डे **बनाम** गोपाल चुन्दर लाला (पूर्वोक्त) वाले मामले में पूर्ण अनुमोदन के साथ उद्धृत किया था । इसलिए, मेरी राय में, साधारणतया यह कहते हुए कि यदि एक पक्षकार पूर्ण जानकारी होते हुए कार्य रोकने में रुचि रखता है जिसमें कार्य किया गया है और उसके प्रति उपमति देता है तो ऐसा युक्तियुक्त विश्वास करने के लिए उत्प्रेरित करता है कि उसने इसकी सहमति दी है और अन्य व्यक्ति अपनी प्रास्थिति उसकी ईमानदारी पर विश्वास करते हुए परिवर्तित कर लेता है तो ऐसे कार्य को, उसके प्रतिकूल होते हुए भी उसे चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं होगा यदि इसे कर लिया गया है तो इसे उसकी पूर्व अनुज्ञप्ति से किया गया कहा जाएगा । विबंधन स्वयमेव ही वाद हेतुक नहीं उद्भूत करता है, यह एक व्यक्ति को कतिपय तथ्यों के बारे में किए गए कथन से इनकार करने के लिए रोकता है ।

15. विचार के लिए अगला महत्वपूर्ण प्रश्न, प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत बेदखली के बदले में प्रतिकर के लिए डिक्री है जिसकी न्यायमूर्ति मिश्रा द्वारा पुष्टि की गई है, विधि में सही है ? मेरी राय में, ऐसी डिक्री विधि के प्रतिकूल है । जब प्रथम अपील न्यायालय ने प्रथम न्यायालय के इस विचार से सहमत था कि

प्रश्नगत भूमि वादी की है तो भूमि सम्पत्ति के बारे में ऐसा निष्कर्ष होते हुए, न्यायालय, वादी को अपने विधिक अधिकारों को छोड़ने और उसके बदले में युक्तियुक्त प्रतिकर, जो भी हो, को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते हैं, ऐसा प्रतीत होता है ।

इसी प्रकार का प्रश्न विचार के लिए बाम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष दो मामलों में अर्थात् गोविन्द वेन्काजी कुलकर्णी **बनाम** सदाशिव भर्मा शेट आई. एल. आर. 17 बाम्बे 771 (एल.) और जेठालाल हीराचन्द **बनाम** लालभाई दलपतभाई [आई. एल. आर. 28 बाम्बे 298 (एम.)] में आया था । बाद वाले मामले में, जिसमें प्रथम मामले की पुष्टि की गई थी, न्यायमूर्ति चन्द्रावरकर ने विद्वान् जिला न्यायाधीश के इस निष्कर्ष पर विचार करते हुए कि वादी प्रतिकर से अधिक पाने का हकदार नहीं है क्योंकि प्रतिवादी की ओर से पांव जमाने के लिए तकनीकी अधिक्रमण किया गया है अथवा वादियों की ओर से उस दीवार का सहारा लिया गया था जो पक्षकारों की सम्पत्तियों को विभाजित करती थी, निम्नलिखित मत व्यक्त किया –

> 'किन्तु, यदि प्रतिवादी के कार्य, वादी से संबंधित प्रतिवादी द्वारा इस प्रकार का अवलंब या आधार लिया जाता है कि वादी की सम्पत्ति पर निरन्तर अतिक्रमण बना रहे और दोषकर्ता को यह कहते हुए नहीं सुना जा सकता है कि वह स्वामी के मात्र हक को ही वंचित किया है और वह बाद में इसका और अधिक उपयोग नहीं करेगा । इस प्रकार की प्रतिरक्षा को मंजूर करना और इस बात के आधार पर प्रतिकर अधिनिर्णीत करना अतिक्रमणकारी को एक अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति में मूल्यवान हक देना होगा और उस व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध इससे उसे वंचित करना होगा ।'

माननीय न्यायाधीश ने यह भी मत व्यक्त किया कि –

> 'किन्तु, जहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की संपत्ति पर उसकी बाद की इच्छा के विरुद्ध या उसकी सहमति के बिना कोई निर्माण करता है तो इसके एवज में व्यवहारिक रूप से जहां आर्थिक प्रतिकर अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे न केवल उसे उसकी सम्पत्ति से वंचित करना होगा

अपितु उसे उसके हक से भी वंचित करना होगा । ऐसे मामलों में क्षतिपूर्ति का आकलन किस प्रकार किया जा सकता है और किस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रतिकर का अधिनिर्णय उस स्वामी के साथ न्याय कर सकता है जिसने संपत्ति का पट्टा दिया है और उस प्रयोजन के लिए इसका प्रयोग करने के अलावा सभी अवसर जिसे वह लाभदायक समझ सकता है जो उसे स्वयं को फायदा पहुंचा सकता था ।'

माननीय न्यायाधीशों ने उपर्युक्त सिद्धांत का अवलंब लिया । मैं इस विषय पर विधि के अपने उपर्युक्त कथन के साथ माननीय न्यायाधीश चन्दावरकर से आदरपूर्वक सहमत हूं और यह विचार व्यक्त करता हूं कि माननीय न्यायाधीश ने इस मुद्दे पर विधि का सही कथन अधिकथित किया है । ऐसे मामले में प्रतिकर के माध्यम से अनुतोष देना अतिक्रमणकर्ता को दूसरे व्यक्ति की संपत्ति को उस व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध क्रय करने की कोटि में आएगा ।

इस बारे में, विधि का कोई सिद्धांत या साम्या नहीं है जो मंजूर किए जाने योग्य है । इसलिए, मेरी राय में, मेरे द्वारा विचार किए गए द्वितीय प्रश्न का उत्तर भी नकारात्मक दिया जाना चाहिए यह कथन करते हुए कि विधि या साम्य के अधीन वादी को बेदखली के बदले में प्रतिकर अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता है जिसके लिए वह वैधतः हकदार है । अधिक्रमित भूमि को वापस पाने का उसका अधिकार उसके स्वामित्व से उद्भूत होता है और उसके विरुद्ध उसके आचरण द्वारा या तो उपमति या त्यजन द्वारा, उसे अपने कब्जे के अधिकार का दावा करने से विबंधित नहीं किया जा सकता है ।"

19. **श्रीनिवास फोग्ला और अन्य** बनाम **सत्यानन्द गुप्ता और अन्य**[1] वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब तक दोनों पक्षकार अपने अधिकारों को नहीं जानते हैं तब तक कोई उपमति नहीं हो सकती है । खंड न्यायपीठ ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

"9. ..... उसके द्वारा अवलंबित मामले अर्थात् खांडीमल हक **बनाम** भरत सिंह **उर्फ** मुस्तफा भागीरथी (ए. आई. आर. 1965 पटना 262) वाला मामला विभेदनीय है और अपीलार्थी की ओर से दी

[1] ए. आई. आर. 1969 पटना 64.

गई दलील का समर्थन नहीं करता है । श्री प्रेम लाल ने अपनी इस दलील के समर्थन में शरत चन्दर डे **बनाम** गोपाल चन्दर लाला सदाशिव भर्मा शेट [(1892) 19 इंडिया अपील 203 (प्रिवी कौंसिल), सर एल. ई. राली **बनाम** ए. आर. फोरवेस (आई. एल. आर. 1 पटना 717 = ए. आई. आर. 1922 पटना 258) और डा. अब्दुल खैर **बनाम** मिस शैला मिर्तला जैम्स और एक अन्य (ए. आई. आर. 1957 पटना 308)] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया कि यदि एक पक्षकार होने वाले कार्य को रोकने में रुचि रखते हुए इस प्रकार उपमति देता है कि जिससे यह युक्तियुक्त विश्वास किया जा सके कि उसने इसके प्रति सहमति दी है और अन्यों की प्रास्थिति उसकी इस ईमानदारी पर विश्वास करते हुए परिवर्तित कर ली गई है तो उसे उस कार्य को आगे चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं रह जाता है । किन्तु, वहां कोई उपमति या त्यजन नहीं हो सकता है जहां दोनों पक्षकार विवादित सम्पत्ति में अपने अधिकारों से अनभिज्ञ हैं । जब तक दोनों पक्षकार विवादित सम्पत्ति के बारे में अपने अधिकारों से पूरी तरह जानकारी नहीं रखते हैं तब तक पक्षकार के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे एक दूसरे के दावे के प्रति उपमति दिए हैं । वर्तमान मामले में, यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि रघुनन्दन साव या वादी इस बारे में जानते थे कि प्रतिवादियों के एकाकी कार्य उनके अधिकारों की प्रकृति परिवर्तित हो जाएगी । इसलिए, प्रतिवादियों के पक्ष में भवन निर्माण करने में कोई विबंधन या साम्या उद्भूत नहीं होता है जो मामले की परिस्थितियों में वादी को वाद गृहों के मोचन दावे से रोक सकें ।"

20. परिणामतः, इसमें उपर्युक्त रूप से व्यक्त की गई मताभिव्यक्तियों और विश्लेषणों को ध्यान में रखते हुए, यह नियमित द्वितीय अपील मंजूर की जाती है । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 28 मई, 2002 का निर्णय और डिक्री इस सीमा तक उपांतरित की जाती है कि वादियों के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध 2,50,000/- रुपए की प्रतिकर रकम पारित की जाए और शेष निर्णय और डिक्री कायम रखी जाए । प्रतिवादियों द्वारा यह रकम आज के दिन से छह सप्ताह की अवधि के भीतर वादियों को संदत्त किया जाएगा जिसमें असफल रहने पर, वादी, प्रतिवादियों से डिक्री रकम के उद्ग्रहण की तारीख तक 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पाने के हकदार होंगे ।

21. 2002 की नियमित द्वितीय अपील सं. 290 में की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, प्रति-आक्षेप सं. 558/2002 में कोई गुणागुण नहीं है और इन्हें खारिज किया जाता है । तथापि, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.

(2014) 1 सि. नि. प. 690 **मध्य प्रदेश**

राम स्वरूप (मृतक) मार्फत **विधिक प्रतिनिधि**

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

तारीख़ 11 फरवरी, 2014

न्यायमूर्ति एम. के. मुदगल

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 54 [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) – धारा 17] – हक़ और क़ब्जे की घोषणा के लिए वाद – संपत्ति अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा क्रय की जानी – विक्रय-विलेख का साक्ष्य में प्रयोग – हक़ और क़ब्जा साबित करने में विफ़लता – घोषणात्मक अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता ।

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 34 – हक़ और क़ब्जे की घोषणा के लिए वाद – वादपत्र में संपत्ति की सर्वेक्षण संख्या उल्लिखित न की जानी – पूर्वतर वादों में न्यायालय द्वारा विवादित संपत्ति सरकार की संपत्ति घोषित की जानी – घोषणात्मक अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता ।

अपीलार्थी-वादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन यह अपील चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, ग्वालियर के न्यायालय द्वारा 2009 की प्रथम अपील सं. 10 में तारीख 11 सितंबर, 2009 को पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर फाइल की है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विवादित संपत्ति प्रदर्श पी/1 द्वारा क्रय की गई थी जोकि एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज नहीं है । यद्यपि प्रदर्श पी/1 में भूमि का मूल्य 90/- रुपए के रूप में उल्लिखित है, तथापि, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के अनुसार उक्त दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत कराया जाना आवश्यक था । अधिनियम की धारा 54 के अधीन यह कहा गया है कि ऐसी स्थावर संपत्ति के विक्रय के लिए जिसका मूल्य 100/- रुपए से अन्यून है, लिखित होना चाहिए और दस्तावेज को रजिस्ट्रीकृत कराया जाना चाहिए जिससे विफल रहने पर उक्त दस्तावेज साक्ष्य में ग्रहण नहीं किया जा सकता । अभिकथित विक्रय-विलेख प्रदर्श पी/1 का वादियों के हक़ और क़ब्जे को साबित करने के लिए कोई विधिक औचित्य नहीं है । इसके अतिरिक्त वादियों ने वाद पत्र में भू-खंड की कोई सर्वेक्षण संख्या उल्लिखित नहीं की है । जबकि प्रदर्श पी/1 में सर्वेक्षण सं. 12 उल्लिखित की गई है । यदि विवादित भूमि सर्वेक्षण सं. 12 का भाग है तो इसका वाद पत्र में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख क्यों नहीं किया गया । उपर्युक्त उल्लिखित तथ्य वादियों द्वारा बताई गई कहानी के संबंध में संदेह उत्पन्न करते हैं । (पैरा 8 और 9)

वादियों के पूर्व हिताधिकारी अर्थात् विक्रेता सदाशिव राव के स्वामित्व को साबित करने के लिए अभिलेख पर कोई दस्तावेज पेश नहीं किया गया है । खसरा प्रविष्टियों के अनुसार सर्वेक्षण सं. 12 'सड़क' के रूप में अभिलिखित की गई है जिससे कि राज्य का स्वामित्व उपदर्शित होता है । अभिलेख के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि वादी ने नगर निगम, ग्वालियर के विरुद्ध हक़ और स्थायी व्यादेश की घोषणा के लिए पहले भी 2001 का वाद सं. 50-ए फाइल किया था । उक्त वाद इस न्यायालय द्वारा 2003 की एस. ए. सं. 130 में तारीख 23 फरवरी, 2007 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत भूमि सरकारी भूमि है । उक्त निष्कर्ष अंतिम बन गए हैं । यहां यह स्पष्ट किया जाता है कि वादी विवादित भूमि पर पूर्वतर मुकदमेबाजी में भी अपना हक़ और विधिक क़ब्जा साबित करने में पूर्णतया विफल रहा है । दोनों निचले न्यायालयों के निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि दोनों विद्वान् न्यायालयों ने अभिलिखित साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि वादी विवादित भूमि पर स्वामित्व और क़ब्जा साबित करने में विफल रहा है । (पैरा 9, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2002] ए. आई. आर. 2002 राजस्थान 66 :
देवेन्द्र सिंह और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** । 8

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की द्वितीय अपील सं. 659.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राजीव श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति एम. के. मुदगल – अपील ग्रहण किए जाने के प्रश्न पर सुना गया । अपीलार्थी-वादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन यह अपील चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, ग्वालियर के न्यायालय द्वारा 2009 की प्रथम अपील सं. 10 में तारीख 11 सितंबर, 2009 को पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर फाइल की है जिसके द्वारा विद्वान् अपर न्यायाधीश ने सिविल न्यायाधीश 2, ग्वालियर के न्यायालय द्वारा 2008 के सिविल वाद सं. 56-ए में तारीख 2 फरवरी, 2009 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की है और जिसके द्वारा वादी द्वारा घोषणा तथा स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया वाद यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज किया गया था कि वादी अपने दावे के समर्थन में कोई दस्तावेज पेश करने में विफल रहा है । इस अपील में अपीलार्थियों को "वादी" और प्रत्यर्थी को "प्रतिवादी" निर्दिष्ट किया गया है ।

2. वाद पत्र में उल्लिखित संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि पवार साहब का बाड़ा, नाका चन्द्रवदानी, ग्वालियर के निकट स्थित विवादित भू-खंड (जिसे आगे संक्षेप में "विवादित भू-खंड" कहा गया है), वादी के पिता ने वर्ष 1950 में तारीख 23 जून, 1950 के अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा सदाशिव राव से क्रय किया था और उसका क़ब्जा लिया था । वादी के पिता ने अपने जीवनकाल के दौरान विवादित भू-खंड के संबंध में वादी के हक़ में तारीख 26 जून, 1970 को एक विल निष्पादित की थी और तत्पश्चात् उनकी तारीख 22 नवंबर, 1972 को मृत्यु हो गई थी । तब से वादी उक्त

भू-खंड पर काबिज है और राजस्व अभिलेख में उसका नाम उक्त भूमि के स्वामी के रूप में अभिलिखित है । इसके पश्चात् वादी ने उक्त भूमि के ऊपर निर्माण कार्य कराने के लिए नगरपालिका के समक्ष अनुमति के लिए आवेदन फाइल किया जिससे इनकार कर दिया गया । अतः उसने 2001 का सिविल वाद सं. 50-ए फाइल किया जो वादी के हक में डिक्री किया गया था और उसे उक्त भू-खंड पर काबिज भूस्वामी घोषित किया गया था । इसके पश्चात् नगरपालिका द्वारा फाइल की गई अपील में अपील न्यायालय ने विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को इस आधार पर उलट दिया कि विवादित भूमि सरकारी भूमि है और मामले में मध्य प्रदेश राज्य को एक आवश्यक पक्षकार बनाना था । इस न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में उक्त निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई थी । अतः अब मध्य प्रदेश राज्य को मामले में पक्षकार बनाने के पश्चात् ऊपर उल्लिखित रूप में अनुतोष का दावा करते हुए वाद फाइल किया गया ।

3. प्रतिवादी-राज्य पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए सूचनाओं की तामील होने के बावजूद न तो प्रतिवादी उपस्थित हुआ और न ही उसने कोई लिखित कथन फाइल किया, अत: मामले में एकपक्षीय कार्यवाही की गई ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने तीन विवाद्यक विरचित करने, दोनों पक्षकारों के साक्ष्य अभिलिखित करने और अभिलिखित साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् प्रतिवादी के विरुद्ध वादी का वाद खारिज कर दिया जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है ।

5. विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर वादी ने प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जो खारिज कर दी गई । अत: यह द्वितीय अपील फाइल की गई है जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

7. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि दोनों विद्वान् निचले न्यायालयों ने वादी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर समुचित रूप से विचार नहीं किया इसलिए उनके द्वारा पारित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि विवादित भूमि हक़

उत्तराधिकारी पंचम सिंह द्वारा तारीख 23 जून, 1950 के अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख प्रदर्श पी/1 द्वारा सदाशिव राव से क्रय की थी । तथापि, दोनों निचले न्यायालयों ने अपीलार्थियों/वादियों के हक़ और क़ब्जे को स्वीकार करने से इनकार कर दिया । इसके अतिरिक्त वादियों ने प्रतिवादी को उक्त संपत्ति का संपत्ति कर संदत्त किया है और इस संबंध में अभिलेख पर रसीदें पेश की गई हैं । तथापि, इन रसीदों को दोनों निचले न्यायालयों ने मनमाने रूप से त्यक्त कर दिया है । काउंसेल ने यह भी दलील दी कि वादी लंबी अवधि से अर्थात् 50 वर्षों से अधिक की अवधि से भूमि पर काबिज है और उनका इस पर क़ब्जा है और इसलिए वादियों के क़ब्जे को संरक्षित करने के लिए स्थायी व्यादेश डिक्री मंजूर की जानी चाहिए ।

8. दलीलों पर विचार किया गया । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलील के अनुसार विवादित संपत्ति प्रदर्श पी/1 द्वारा क्रय की गई थी जो कि एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज नहीं है । यद्यपि प्रदर्श पी/1 में भूमि का मूल्य 90/- रुपए के रूप में उल्लिखित है, तथापि, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के अनुसार उक्त दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत कराया जाना आवश्यक था । अधिनियम की धारा 54 के अधीन यह कहा गया है कि ऐसी स्थावर संपत्ति के विक्रय के लिए जिसका मूल्य 100/- रुपए से अन्यून है, लिखित होना चाहिए और दस्तावेज को रजिस्ट्रीकृत कराया जाना चाहिए जिससे विफल रहने पर उक्त दस्तावेज साक्ष्य में ग्रहण नहीं किया जा सकता जैसा कि **देवेन्द्र सिंह और अन्य** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य**[1] वाले मामले के निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया है ।

9. उपर्युक्त उपबंध पर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अभिकथित विक्रय-विलेख प्रदर्श पी/1 का वादियों के हक़ और क़ब्जे को साबित करने के लिए कोई विधिक औचित्य नहीं है । इसके अतिरिक्त वादियों ने वाद पत्र में भू-खंड की कोई सर्वेक्षण संख्या उल्लिखित नहीं की है । जबकि प्रदर्श पी/1 में सर्वेक्षण सं. 12 उल्लिखित की गई है । यदि विवादित भूमि सर्वेक्षण सं. 12 का भाग है तो इसका वाद पत्र में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख क्यों नहीं किया गया । उपर्युक्त उल्लिखित तथ्य वादियों द्वारा बताई गई कहानी के संबंध में संदेह उत्पन्न करते हैं । वादियों के पूर्व हिताधिकारी अर्थात् विक्रेता सदाशिव राव के स्वामित्व को साबित करने के

---

[1] ए. आई. आर. 2002 राजस्थान 66.

लिए अभिलेख पर कोई दस्तावेज पेश नहीं किया गया है । खसरा प्रविष्टियों के अनुसार सर्वेक्षण सं. 12 'सड़क' के रूप में अभिलिखित की गई है जिससे कि राज्य का स्वामित्व उपदर्शित होता है ।

10. अभिलेख के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि वादी ने नगर निगम, ग्वालियर के विरुद्ध हक और स्थायी व्यादेश की घोषणा के लिए पहले भी 2001 का वाद सं. 50-ए फाइल किया था । उक्त वाद इस न्यायालय द्वारा 2003 की एस. ए. सं. 130 में तारीख 23 फरवरी, 2007 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत भूमि सरकारी भूमि है । उक्त निष्कर्ष अंतिम बन गए हैं । यहां यह स्पष्ट किया जाता है कि वादी विवादित भूमि पर पूर्वतर मुकदमेबाजी में भी अपना हक और विधिक कब्जा साबित करने में पूर्णतया विफल रहा है ।

11. दोनों निचले न्यायालयों के निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि दोनों विद्वान् न्यायालयों ने अभिलिखित साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि वादी विवादित भूमि पर स्वामित्व और कब्जा साबित करने में विफल रहा है । उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए इस अपील को ग्रहण करने के लिए विधि का कोई सारभूत प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है । चूंकि दोनों न्यायालयों ने एक जैसा निष्कर्ष निकाला है इसलिए अपील में कोई बल नहीं है और यह बिना किसी संदेह के खारिज किए जाने योग्य है । अतः अपील एतद्द्वारा खारिज की जाती है ।

12. खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

लोकेन्द्र सिंह गुर्जर

बनाम

राजस्थान राज्य और एक अन्य

तारीख 6 नवम्बर, 2013

न्यायमूर्ति एम. एन. भंडारी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा व्यायाम प्रशिक्षक की नियुक्ति के लिए विज्ञापन – आवेदन के लिए पात्रता शर्तें – याची का अर्हता प्रमाणपत्र विनियमों के अनुसार न होना – नियुक्ति से इनकार – रिट याचिका – रिट याचिका स्वीकार नहीं की जा सकती ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 और 226 – राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा व्यायाम प्रशिक्षक ग्रेड-III की भर्ती के लिए विज्ञापन – याची की अर्हता विनियमों के अनुसार न होने के कारण चयन से इनकार – याची द्वारा समानता के अधिकार का अवलंब – जहां समानता के आधार पर दावा किए जाने पर यह पाया जाए कि कोई विभेद नहीं किया गया है वहां अनुच्छेद 14 के आधार पर कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता ।

इस रिट याचिका द्वारा, राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा याची को अपात्र ठहराने के लिए तारीख 17 अक्तूबर, 2013 को पारित आदेश को चुनौती दी गई है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – एन.सी.टी.ई. द्वारा केवल समतुल्यता के प्रश्न का विनिश्चय किया जा सकता है । एन.सी.टी.ई. से सेना के व्यायाम प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को मान्यता देने के लिए कहा गया था किन्तु सिफारिश को स्वीकार करने के लिए कोई आदेश नहीं किया गया है । इसके अभाव में, यदि भारत सरकार का कोई प्रशासनिक आदेश विद्यमान भी हो तो भी इसे कानूनी उपबंध के प्रतिकूल नहीं पढ़ा जा सकता । कानूनी उपबंध ही अभिभावी होगा, न कि प्रशासनिक आदेश । निश्चित रूप से प्रशासनिक आदेश कानूनी उपबंध का अनुपूरक हो सकता है किन्तु इसका स्थान नहीं ले सकता । याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 1975 के आदेश का निर्देश किया गया है । न्यायालय को उपरोक्त का कोई परिणाम

प्रतीत नहीं होता क्योंकि एन.सी.टी.ई. अधिनियम वर्ष 1933 में आया है और उसके अनुसरण में 2001 में विनियम बने हैं । उस तारीख को जिसको प्रशासनिक आदेश पारित हुआ है, कानूनी उपबंध विद्यमान नहीं थे । अब स्थिति बदल गई है और इसलिए तारीख 2 अप्रैल, 1995 के आदेश को कानूनी उपबंध के विरुद्ध प्रवृत्त नहीं किया जा सकता । जहां तक नवीनतम पत्राचार का संबंध है, यह आर.पी.एस.सी. और एन.सी.टी.ई. से किया गया अनुरोध है । तथापि, विनियम में संशोधन करने के लिए एन.सी.टा.ई. का कोई आदेश या अधिसूचना नहीं है जिससे कि अर्हता के समाधान के लिए याची द्वारा लिए गए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को सम्मिलित किया जा सके । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, याची के दावे को, जिसमें नियम की अपेक्षा को पूरा करने के लिए सेना से लिए गए व्यायाम प्रशिक्षण पाठ्यक्रम मानने के लिए अनुरोध किया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता, अपितु उसके अनुरोध को मंजूर करना कानूनी उपबंध के अतिक्रमण के बराबर होगा । (पैरा 8 और 9)

अब प्रश्न यह है कि क्या याची के साथ विभेद किया गया है यदि समान प्रास्थिति वाले अभ्यर्थियों को वैसी ही अर्हता के रखने के बावजूद सेवा में उनको लेकर उन्हें फायदा दिया गया है । न्यायालय ने वैसी ही अर्हता रखने वाले किसी अभ्यर्थी को दर्शाने वाला अभिलेख पर कुछ नहीं पाया है जिसके आधार पर उन्हें नियुक्ति दी गई हो और वे निरन्तर सेवा में हों । पूर्वोक्त तथ्य का पैरा 'डी' में निर्देश किया गया है किन्तु कोई सबूत या ब्यौरे नहीं दिए गए हैं । याची ऐसे किसी अभ्यर्थी का नाम बताने में असफल रहा है जिसे ऐसा फायदा दिया गया हो और इस प्रकार विभेद बताने के लिए गलत आधार लिया गया है, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, विभेद का कोई मामला नहीं बनता है । यदि बद्री लाल वाले मामले की परीक्षा की जाए तो याचिका विभेद का मामला मानते हुए मंजूर की गई थी । न्यायालय के समक्ष का मामला उपर्युक्त प्रकृति का मामला नहीं है । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस मामले में अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण का भी दावा नहीं किया जा सकता क्योंकि यह प्रत्यर्थियों के विधिविरुद्ध कार्य पर आधारित है । समानता के अधिकार का दावा तभी किया जा सकता है यदि दूसरों को फायदा उनके विधिक अधिकारों के आधार पर दिया गया हो । यदि प्रत्यर्थियों के अविधिक कार्य के आधार पर समानता के दावे को स्वीकार किया जाए तो न्यायालय द्वारा अवैधता को बढ़ावा देना होगा

जिससे बचा जाना चाहिए और इसे बढ़ावा देने के बजाय अवैधता दूर करने के लिए प्रत्यर्थियों को समुचित निदेश दिया जाना चाहिए । (पैरा 10)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2006] 1997 की सिविल रिट याचिका सं. 2808, तारीख 20.12. 2006 को विनिश्चित : **बद्री लाल** बनाम **सरकार का सचिव, शिक्षा विभाग, जयपुर और अन्य** । 3,10

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2013 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 19350.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री संदीप सक्सेना

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति एम. एन. भंडारी – इस रिट याचिका द्वारा, राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा याची को अपात्र ठहराने के लिए तारीख 17 अक्तूबर, 2013 को पारित आदेश को चुनौती दी गई है ।

2. विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा जारी किए गए विज्ञापन के अनुसरण में याची ने व्यायाम प्रशिक्षक ग्रेड-III के पद के लिए आवेदन किया था । याची को चयन के लिए बुलाया गया था और उसे योग्य पाते हुए नियुक्ति दी गई थी । अब उसे तारीख 17 अक्तूबर, 2013 के आक्षेपित आदेश द्वारा अयोग्य घोषित कर दिया गया है ।

3. विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि याची के पास अपेक्षित अर्हता थी तथापि, उसे केवल इस कारण से अस्वीकार कर दिया गया कि याची ने यह अर्हता सेवा में रहते हुए प्राप्त की थी । इसके द्वारा भारत सरकार द्वारा जारी उस आदेश की भी उपेक्षा की गई है जिसके द्वारा धारित अर्हता को प्रश्नगत पद के लिए समुचित अर्हता माना गया है । अतः आर.पी.एस.सी. की कार्रवाई विधिविरुद्ध है और अन्यथा भी याची की की गई नियुक्ति को निरर्थक बनाया जा सकता है । यह भी अभिकथन किया गया है कि उसके समान अभ्यर्थियों को अयोग्य नहीं माना गया है, अपितु

उन्हें नियुक्ति दी गई है और निरन्तर सेवा में हैं । इस न्यायालय द्वारा **बद्री लाल** बनाम **सरकार का सचिव, शिक्षा विभाग, जयपुर और अन्य**[1] वाले मामले में रिट याचिका मंजूर की गई है । तद्नुसार, याची के सेवा में बने रहने के लिए प्रत्यर्थियों को निदेश देते हुए आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जा सकता है ।

4. दलीलों के दौरान, याची के विद्वान् काउंसेल ने आर.पी.एस.सी. के लिए सेना के अधिकारियों और सेना व्यायाम प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम की मान्यता के लिए एन.सी.टी.ई. द्वारा लिखित कतिपय पत्रों का भी निर्देश किया है ।

5. मैंने याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया ।

6. राजस्थान लोक सेवा आयोग (आर.पी.एस.सी.) ने एक विज्ञापन जारी किया था जिसमें अपेक्षित अर्हताएं उल्लिखित की गई थीं । यह अर्हता याची द्वारा प्राप्त अर्हता से भिन्न थी । याची ने भिन्न अवधि के व्यायाम प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की अर्हता प्राप्त की है और यदि इस प्रमाणपत्र की अवधि को विचार में लिया जाए तो यह अधिकतम चार मास का है । विचार के लिए प्रश्न यह है कि क्या याची द्वारा प्राप्त व्यायाम प्रशिक्षण पाठ्यक्रम इसके समतुल्य है या इसे व्यायाम प्रशिक्षक ग्रेड-III के पद के लिए पर्याप्त समझा जा सकता है । उपर्युक्त प्रयोजन के लिए यह सुसंगत होगा कि एन.सी.टी.ई. के विनियम का उल्लेख किया जाए जो अनेक पदों के लिए अर्हता के बारे में उपबंध करता है । निर्देश के लिए विनियम का सुसंगत भाग इस प्रकार है :–

स्तर	न्यूनतम शैक्षणिक और व्यावसायिक अर्हताएं
I. प्रारंभिक	(i) सीनियर सेकेन्डरी स्कूल प्रमाणपत्र या इंटरमीडिएट या इसके समतुल्य; और (ii) ऐसी अवधि का जो दो वर्ष से कम न हो, व्यायाम शिक्षा में प्रमाणपत्र (सी.पी.एड.) या इसके समतुल्य ।
II. सेकेन्डरी/ हाई स्कूल	व्यायाम शिक्षा बैचलर (बी.पी.एड.) के साथ स्नातक या इसके समतुल्य ।

[1] 1997 की सिविल रिट याचिका सं. 2808, तारीख 20.12.2006 को विनिश्चित ।

III. सीनियर सेकेन्डरी एक वैकल्पिक विषय के रूप में (व्यायाम शिक्षा)	एम.पी.ई./एम.पी.एड. (अवधि 2 वर्ष)

7. उपर्युक्त उल्लिखित उपबंध के परिशीलन मात्र से न केवल अवधि बल्कि पदों के विभिन्न स्तर के लिए किसी अभ्यर्थी द्वारा धारित पाठ्यक्रम भी उपदर्शित होता है । यह विवादित नहीं है कि विनियम में निर्देशित पाठ्यक्रम याची ने उत्तीर्ण नहीं किया है । उसने विनियम के अधीन अपेक्षित अर्हता होने का दावा किया है और उस प्रयोजन के लिए भारत सरकार द्वारा जारी परिपत्र के लाभ का दावा किया गया है । मैं यह पाता हूं कि एन.सी.टी.ई. द्वारा समतुल्यता के विवाद्यक का विनियम 6 को ध्यान में रखते हुए विनिश्चय किया जा सकता है । निर्देश के लिए पूर्वोक्त उपबंध को उद्धृत किया जा रहा है :–

> "**6. निर्वचन**
>
> यदि इन विनियमों के निर्वचन या विभिन्न अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के संबंध में कोई प्रश्न उद्भूत होता है तो कौंसिल का विनिश्चय अंतिम होगा ।"

8. ऊपर उल्लिखित उपबंध को ध्यान में रखते हुए, एन.सी.टी.ई. द्वारा केवल समतुल्यता के प्रश्न का विनिश्चय किया जा सकता है । एन.सी.टी.ई. से सेना के व्यायाम प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को मान्यता देने के लिए कहा गया था किन्तु सिफारिश को स्वीकार करने के लिए कोई आदेश नहीं किया गया है । इसके अभाव में, यदि भारत सरकार का कोई प्रशासनिक आदेश विद्यमान भी हो तो भी इसे कानूनी उपबंध के प्रतिकूल नहीं पढ़ा जा सकता । कानूनी उपबंध ही अभिभावी होगा, न कि प्रशासनिक आदेश । निश्चित रूप से प्रशासनिक आदेश कानूनी उपबंध का अनुपूरक हो सकता है किन्तु इसका स्थान नहीं ले सकता । याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 1975 के आदेश का निर्देश किया गया है । मुझे उपरोक्त का कोई परिणाम प्रतीत नहीं होता क्योंकि एन.सी.टी.ई. अधिनियम वर्ष 1933 में आया है और उसके अनुसरण में 2001 में विनियम बने हैं । उस तारीख को जिसको प्रशासनिक आदेश पारित हुआ है, कानूनी उपबंध विद्यमान नहीं थे । अब स्थिति बदल गई है

और इसलिए तारीख 2 अप्रैल, 1995 के आदेश को कानूनी उपबंध के विरुद्ध प्रवृत्त नहीं किया जा सकता ।

9. जहां तक नवीनतम पत्राचार का संबंध है, यह आर.पी.एस.सी. और एन.सी.टी.ई. से किया गया अनुरोध है । तथापि, विनियम में संशोधन करने के लिए एन.सी.टी.ई. का कोई आदेश या अधिसूचना नहीं है जिससे कि अर्हता के समाधान के लिए याची द्वारा लिए गए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को सम्मिलित किया जा सके । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए याची के दावे को, जिसमें नियम की अपेक्षा को पूरा करने के लिए सेना से लिए गए व्यायाम प्रशिक्षण पाठ्यक्रम मानने के लिए अनुरोध किया है, स्वीकार नहीं किया जा सकता, अपितु उसके अनुरोध को मंजूर करना कानूनी उपबंध के अतिक्रमण के बराबर होगा ।

10. अब प्रश्न यह है कि क्या याची के साथ विभेद किया गया है यदि समान प्रास्थिति वाले अभ्यर्थियों को वैसी ही अर्हता के रखने के बावजूद सेवा में उनको लेकर उन्हें फायदा दिया गया है । मैंने वैसी ही अर्हता रखने वाले किसी अभ्यर्थी को दर्शाने वाला अभिलेख पर कुछ नहीं पाया है जिसके आधार पर उन्हें नियुक्ति दी गई हो और वे निरन्तर सेवा में हों । पूर्वोक्त तथ्य का पैरा 'डी' में निर्देश किया गया है किन्तु कोई सबूत या ब्यौरे नहीं दिए गए हैं । याची ऐसे किसी अभ्यर्थी का नाम बताने में असफल रहा है जिसे फायदा दिया गया हो और इस प्रकार विभेद बताने के लिए गलत आधार लिया गया है, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, विभेद का कोई मामला नहीं बनता है । यदि **बद्री लाल**[1] वाले मामले की परीक्षा की जाए तो याचिका विभेद का मामला मानते हुए मंजूर की गई थी । हमारे समक्ष का मामला उपर्युक्त प्रकृति का मामला नहीं है । यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस मामले में अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण का भी दावा नहीं किया जा सकता क्योंकि यह प्रत्यर्थियों के विधिविरुद्ध कार्य पर आधारित है । समानता के अधिकार का दावा किया जा सकता है यदि दूसरों को फायदा उनके विधिक अधिकारों के आधार पर दिया गया हो । यदि प्रत्यर्थियों के अविधिक कार्य के आधार पर समानता के दावे को स्वीकार किया जाए तो न्यायालय द्वारा अवैधता को बढ़ावा देना होगा जिससे बचा जाना चाहिए

---

[1] 1997 सिविल रिट याचिका सं. 2808, तारीख 20.12.2006 को विनिश्चित ।

और इसे बढ़ावा देने के बजाय अवैधता दूर करने के लिए प्रत्यर्थियों को समुचित निदेश दिया जाना चाहिए ।

11. उपर्युक्त की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मुझे रिट याचिका में कोई बल प्रतीत नहीं होता है तथापि, आर.पी.एस.सी. को यह निदेश देना आवश्यक है कि चयन परीक्षण या परिणाम की घोषणा से पूर्व और किसी स्थिति में नियुक्ति के लिए सिफारिश करने से पूर्व अभ्यर्थी की पात्रता की परीक्षा करे कि वह अयोग्य अभ्यर्थियों की नियुक्ति से बचने के लिए और हमारे समक्ष अंतर्वलित प्रकृति की मुकदमेदारी से बचने के लिए ऐसा करना आवश्यक है ।

12. तद्नुसार रिट याचिका और रोक आवेदन खारिज किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 702 **राजस्थान**

***धूला**

बनाम

नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य

तथा

धूला

बनाम

नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य

तथा

धूला

बनाम

नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य

---

* मूल निर्णय हिन्दी में है ।

तथा

सोमा

बनाम

नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य

तथा

सोमा

बनाम

नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य

तथा

शंकर के विधिक प्रतिनिधि

बनाम

नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य

तथा

शंकर के विधिक प्रतिनिधि

बनाम

नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर और अन्य

तारीख 16 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी

राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956 – धारा 90-ख [सपठित राजस्थान सरकार का परिपत्र सं. 4-5(8)नविवि/3/99 दिनांक 26 मई, 2000 और परिपत्र सं. जी.आर. 6/99/5 दिनांक 14.2.2001] – कृषि भूमि को आवासीय भूमि में परिवर्तित करने के लिए आवेदन – विकास शुल्क – पूर्व परिपत्र के दौरान विकास शुल्क जमा न करना – नए परिपत्र के अनुसार मांग – अपीलार्थीगण अपनी चूक के कारण नए परिपत्र के अनुसार विकास शुल्क जमा करने के लिए जिम्मेदार हैं ।

सभी सातों अपीलों में प्रकरण की तथ्यात्मक एवं कानूनी स्थिति

समान होने एवं इन सातों अपीलों में राज्य सरकार के परिपत्र क्रमांक-प-5(8)नविवि/3/99, दिनांकित 26 मई, 2000, परिपत्र क्रमांक जी.आर.6/99/5, दिनांकित 14.2.2001 तथा क्रमांक प.6(19)राज-6/99, दिनांकित 20.9.2001 की विषयवस्तु अन्तर्वलित होने के परिणामस्वरूप सुविधा की दृष्टि से इनका निस्तारण एक ही निर्णय से किया जा रहा है । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – ऐसी स्थिति में वर्तमान सभी प्रकरणों की तथ्यात्मक स्थिति से यह स्पष्ट है कि जिस समय वादी/अपीलार्थीगण ने विवादित कृषि भूमि को आवासीय भूमि में परिवर्तन कराने के क्रम में आवेदन किया था उस समय पूर्व नियमों के तहत उक्त पट्टा जारी करने के क्रम में समस्त कार्यवाही एवं बकाया विकास शुल्क प्रत्यर्थी संख्या 1/प्रतिवादी संख्या 2 के कार्यालय में ही जमा होना सुनिश्चित था । "नियम, 181" परिपत्र दिनांकित 14.2.2001 के जरिए निरसित हो जाने के पश्चात् संबंधित भूमि के पट्टे के क्रम में आवेदन प्रस्तुत करने एवं प्रतिवादी संख्या 2 के कार्यालय में विकास शुल्क की अदायगी नहीं होकर उपखण्ड अधिकारी या अन्य किसी कार्यालय में होने का प्रावधान है उस स्थिति के प्रभाव में आने के बावजूद, चूंकि वर्तमान प्रकरण दिनांक 14.2.2001 के पूर्व का है, ऐसी स्थिति में पट्टा जारी करने व विकास शुल्क जमा करने के क्रम में समस्त कार्यवाही प्रत्यर्थी संख्या 1/प्रतिवादी संख्या 2 के माध्यम से ही की जानी थी । उक्त परिपत्र की रोशनी में यदि वर्तमान प्रकरण का अवलोकन किया जाए तो प्रकट होता है कि विवादित जमीन के कृषि भूमि आवासीय भूमि में रूपान्तरण के क्रम में सभी अपीलार्थीगण/वादीगण की ओर से दिनांक 1.12.1999 को आवेदन किया गया एवं दिनांक 7.12.1999 को स्वतः निर्धारण के तहत राशि जमा कराई गई एवं तत्पश्चात् प्रतिवादी संख्या 2 के यहां बकाया राशि जमा कराने का आदेश दिया गया । यानी कि अपीलार्थीगण/वादीगण को भूमि रूपान्तरण राशि जमा कराने के क्रम में जो भी आदेश दिया गया वह परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के पूर्व का है । परिपत्र दिनांक 26.5.2000, 14.2.2001 एवं 20.9.2001 के अवलोकन से प्रकट होता है कि जहां 14 फरवरी, 2001 के पूर्व किसी प्रकार की कोई कार्यवाही अमल में लाई जा चुकी है उस स्थिति में वह कार्यवाही यथावत (भूमि रूपान्तरण के क्रम में) बनी रहेगी तथा पूर्व के नियम "नियम, 1981" व उसके तहत जारी परिपत्रों से शासित होगी । वर्तमान प्रकरण में

परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 तक राशि जमा नहीं होने पर उक्त परिपत्र के खण्ड संख्या 'ब' के अनुसार यह प्रावधान है कि यदि किसी प्रकरण में रूपान्तरण शुल्क जमा करा दिया गया है और विकास शुल्क जमा नहीं कराया गया है तो ऐसे मामलों में वर्तमान प्रचलित नियमन दर की अन्तर राशि जमा करार नियमन किया जाए । यदि 14 फरवरी, 2001 को परिपत्र प्रभाव में नहीं होता उस स्थिति में उसके अपवाद खण्ड के अनुसार व परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के खण्ड 'ब' के तहत अपीलार्थीगण को प्रचलित वर्तमान दर की अन्तर राशि जमा कराने पर ही विवादित भूमि का नियमन किया जा सकता था । वर्तमान प्रकरण के तथ्यों से यह स्वीकृत है कि अपीलार्थीगण की ओर से पूर्व आदेशित राशि दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र के अनुसार किसी प्रकार का विकास शुल्क पूर्व में जमा नहीं कराया है, ऐसी स्थिति में 14 फरवरी, 2001 के परिपत्र में उपरोक्तानुसार जो अपवाद खण्ड है उसकी परिधि में अपीलार्थीगण का प्रकरण होने के परिणामस्वरूप अपीलार्थीगण को दिनांक 26.5.2000 के खंड संख्या 'ब' के तहत वर्तमान प्रचलित दर अनुसार राशि जमा कराना आवश्यक था । परिपत्र दिनांकित 14 फरवरी, 2001 के तहत मात्र "नियम, 1981" को निरसित करने का प्रभाव भविष्य में 14 फरवरी, 2001 के पश्चात् यदि भूमि के रूपान्तरण के क्रम में कोई आवेदन किया जाता है तो उस क्रम में उसका रूपान्तरण/विकास शुल्क नए कानूनी प्रावधानों के तहत शासित होगा । अपीलार्थीगण के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा यह प्रकट किया गया कि विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 2 अपीलार्थीगण के पक्ष में व प्रत्यर्थी संख्या 1/प्रतिवादी संख्या 2 नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर के विरुद्ध तय किए हैं तथा नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर की ओर से प्रस्तुत गवाह को प्रक्रिया की जानकारी नहीं है एवं दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र के तहत कितने प्रकरणों के तहत कार्यवाही की गई है, इसको बताने में असमर्थ रहने पर विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विवाद्यक संख्या 2 को तय करते समय अपीलार्थीगण के दायित्व पर कोई चूक नहीं मानी है, ऐसी स्थिति में अपीलार्थीगण दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र से शासित नहीं हैं । इस न्यायालय की राय में, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा मात्र प्रत्यर्थी नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर की ओर से प्रस्तुत गवाह को अन्य विचाराधीन प्रकरणों में दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र के तहत कार्यवाही की जानकारी नहीं होने के आधार पर यह माना कि उक्त गवाह को प्रक्रिया की जानकारी नहीं है । ऐसी सूरत में दिनांक 26.5.2000 के

परिपत्र को लागू नहीं किया जा सकता है । इस न्यायालय की राय में, परिपत्र की व्याख्या परिपत्र की मंशा व कानून के अनुसार होना आवश्यक है न कि किसी गवाह की साक्ष्य से । यदि किसी संस्था के द्वारा नियमानुसार प्रक्रिया नहीं बनाई गई या भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रक्रिया एक समान प्रकरणों में अपनाई गई है तब भी उक्त प्रक्रिया के आधार पर जारी परिपत्र दिनांक 26.5.2000 को परिपत्र दिनांक 14.2.2001 व 20.9.2001 की रोशनी में अप्रभावी नहीं माना जा सकता, बल्कि अपीलार्थीगण की ओर से प्रस्तुत प्रकरण की अभिवचनात्मक स्थिति के अनुसार अपीलार्थीगण को अपनी ओर से दिनांक 26.5.2000 के पूर्व राशि जमा करा दिए जाने के तथ्य को न केवल अंकित करना बल्कि उसे प्रमाणित किया जाना भी आवश्यक था । यदि अपीलार्थीगण की ओर से राशि जमा कराने हेतु निवेदन किया गया और प्रत्यर्थीगण की ओर से जानबूझकर चूक कर राशि जमा नहीं की गई तो इस स्थिति में अपीलार्थीगण अन्य तरीके से भी संबंधित कार्यालय में अथवा उच्च अधिकारी को नियमानुसार आवेदन कर राशि जमा/प्राप्त करने के क्रम में आदेश प्राप्त कर राशि जमा करवाई जा सकती है और उक्त राशि जमा होने के पश्चात् अपीलार्थीगण से परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के खण्ड "ब" के तहत राशि वसूल नहीं की जा सकती, बल्कि उक्त परिपत्र के खण्ड "अ" के तहत पूर्ण राशि जमा मानकर प्रकरण का निस्तारण किया जा सकता था । उपरोक्तानुसार अपीलार्थीगण का प्रकरण परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के खण्ड "अ" में नहीं आने के परिणामस्वरूप खण्ड "ब" की परिधि में आने एवं परिपत्र दिनांकित 14 फरवरी, 2001 के अपवाद खण्ड के तहत व परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के अस्तित्व में होने तथा अपीलार्थीगण की ओर से वर्तमान प्रचलित दर से विकास शुल्क राशि जमा नहीं होने से वर्तमान प्रचलित दर से विकास शुल्क राशि जमा नहीं होने के परिणामस्वरूप अपीलार्थीगण पुरानी विकास दर के आधार पर राशि जमा कराकर अनुतोष प्राप्त करने के अधिकारी नहीं हैं । ऐसी सूरत में, इस न्यायालय द्वारा बनाए गए सारवान् विधिक बिन्दु के क्रम में यह पाया जाता है कि परिपत्र दिनांकित 20.9.2001 व 14.2.2001 के तहत विकास शुल्क वसूलने योग्य होने के क्रम में पारित निष्कर्ष में किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है । फलस्वरूप, अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत उक्त सभी अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं । (पैरा 14,17,18 और 19)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : एकल पीठ सिविल द्वितीय अपील सं. 126/2013, 127/2013,128/2013, 129/2013,130/2013,131/2013 और 132/2013.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन सिविल द्वितीय अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री मुक्तेश माहेश्वरी

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री ए. के. जैन

न्यायमूर्ति महेन्द्र माहेश्वरी – उक्त सभी सातों अपीलों में प्रकरण की तथ्यात्मक एवं कानूनी स्थिति समान होने एवं इन सातों अपीलों में राज्य सरकार के परिपत्र क्रमांक-प-5(8)नविवि/3/99, दिनांकित 26 मई, 2000, परिपत्र क्रमांक जी.आर.6/99/5, दिनांकित 14.2.2001 तथा क्रमांक प.6(19)राज-6/99, दिनांकित 20.9.2001 की विषयवस्तु अन्तर्वलित होने के परिणामस्वरूप सुविधा की दृष्टि से इनका निस्तारण एक ही निर्णय से किया जा रहा है ।

2. उक्त सभी अपीलों के क्रम में अपीलार्थीगण/वादीगण द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खण्ड), उदयपुर शहर दक्षिण, उदयपुर (एत्द पश्चात् जिन्हें "विचारण न्यायालय" से सम्बोधित किया जाएगा) के समक्ष प्रस्तुत पृथक्-पृथक् वाद की तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार प्रकरण के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थीगण/वादीगण ने विचारण न्यायालय के समक्ष पृथक्-पृथक् वाद प्रस्तुत कर निवेदन किया कि उन्होंने अपने काश्तकारी खसरा संख्या (वादपत्र में अंकितानुसार) में से वादपत्र में अंकित वर्ग गज की भूमि आवासीय प्रयोजनार्थ रूपान्तरण करने के क्रम में सभी वादीगण द्वारा दिनांक 1.12.1999 को पृथक्-पृथक् आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात् स्वतः निर्धारण के आधार पर राशि चालान के माध्यम से प्राधिकृत अधिकारी (भूमि रूपान्तरण), उदयपुर के कार्यालय में जमा कराई । तत्पश्चात् भूमि रूपान्तरण के क्रम में प्राधिकृत अधिकारी द्वारा अन्य बकाया राशि के बारे में सूचित कर प्रतिवादी संख्या 2/प्रत्यर्थी संख्या 1 के यहां जमा कराने के आदेश पारित होने पर उक्त राशि प्रतिवादी संख्या 2/प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पत्रावली जयपुर में भेजे जाने का बहाना बताकर विकास शुल्क जमा नहीं करने पर पूर्व में भूमि रूपान्तरण के क्रम में पारित आदेश के तहत भूमि

रूपान्तरण नहीं होने पर वादी/अपीलार्थी द्वारा वाद प्रस्तुत करने के पूर्व धारा 80 सी.पी.सी. व धारा 98 नगर सुधार अधिनियम के तहत नोटिस दिया गया एवं नोटिस की अवधि समाप्त होने के पश्चात् भी भूमि रूपान्तरण के क्रम में राजस्थान भू-राजस्व (नगरीय क्षेत्रों में कृषि भूमि का अकृषि में आवासीय/वाणिज्यिक उपयोग हेतु आबंटन/संपरिवर्तन/नियमितीकरण) नियम, 1981 (एत्द पश्चात् जिन्हें "नियम, 1981" से सम्बोधित किया जाएगा) के तहत विकास शुल्क प्राप्त नहीं करने के परिणामस्वरूप एवं भूमि का आवासीय प्रयोजनार्थ रूपान्तरण नहीं करने के कारण स्थायी निषेधाज्ञा चाही गई ।

3. प्रत्यर्थी संख्या 2 (प्रतिवादी संख्या 1) राज्य सरकार द्वारा विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय में जवाब प्रस्तुत नहीं किया गया, जिसके परिणामस्वरूप अधीनस्थ न्यायालय द्वारा राज्य सरकार का जवाब बन्द किया गया । प्रतिवादी सं. 2 (प्रत्यर्थी संख्या 1) नगर विकास प्रन्यास द्वारा अधीनस्थ न्यायालय में जवाब प्रस्तुत कर यह बताया गया कि अपीलार्थी/वादी की ओर से विकास शुल्क जमा नहीं कराया गया एवं जारी आबंटन-पत्र की अनुपालना में देय राशि मय ब्याज व शास्ति के जमा कराने पर ही नियमों के तहत लीज डीड/पट्टा जारी किया जा सकता है तथा भूमि रूपान्तरण कार्यालय बन्द होने एवं सरकार द्वारा भूमि रूपान्तरण नियमों को विलोपित किए जाने के परिणामस्वरूप नए नियमों के तहत धारा 90-बी भू-राजस्व अधिनियम के तहत कार्यवाही किए जाने के अलग से प्रावधान हैं ।

4. दोनों पक्षों के अभिवचनों के आधार पर विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण/वादीगण द्वारा प्रस्तुत सभी वादों में कुल तीन विवाद्यक बनाए गए, जो निम्न प्रकार हैं :–

> "(1) आया वादी दिनांक 7.12.99 के आदेश के तहत विकास शुल्क जमा करा पट्टा प्राप्त करने का अधिकारी है ?
>
> (2) आया वादी द्वारा नियत समय पर विकास शुल्क जमा नहीं कराया गया है । इस कारण अब वर्तमान प्रचलित दर से प्रतिवादी पक्ष विकास शुल्क की राशि प्राप्त करने का अधिकारी है ?
>
> (3) अनुतोष ?"

5. उपरोक्त विवाद्यकों के क्रम में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पृथक्-पृथक् निर्णय से वादीगण द्वारा प्रस्तुत पृथक्-पृथक् उपर्युक्त वाद

डिक्री किए जाकर संबंधित आदेश की अनुपालना में परिपत्र क्रमांक प.6(19)राज.6/99, दिनांक 20.9.2001 (एतद् पश्चात् जिसे "परिपत्र, 2001" से सम्बोधित किया जाएगा) के अनुक्रम में कार्यवाही करते हुए निर्धारित विकास शुल्क जमा कर आबंटन-पत्र जारी करने की कार्यवाही करने हेतु प्रतिवादीगण को आदेश पारित किए गए ।

6. उक्त निर्णय व डिक्री के क्रम में प्रत्यर्थी संख्या 1/प्रतिवादी संख्या 2 ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश संख्या 2, उदयपुर के समक्ष पृथक्-पृथक् मूल दीवानी अपीलें प्रस्तुत की गईं, जिन्हें विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश संख्या 2, उदयपुर (एतद् पश्चात् "प्रथम अपीलीय न्यायालय" से सम्बोधित किया जाएगा) द्वारा दिनांक 30.3.2013 को पारित पृथक्-पृथक् निर्णय से निर्णीत करते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अपास्त करते हुए वादी/अपीलार्थीगण द्वारा वर्तमान प्रचलित दर से प्रतिवादी को विकास शुल्क की राशि नियमानुसार जमा कराने पर व अन्य औपचरिकताओं की नियमानुसार पूर्ति किए जाने पर पट्टा प्राप्त करने का अधिकारी घोषित किया गया ।

7. उपरोक्तानुसार दोनों न्यायालय के निर्णय के अवलोकन से प्रकट होता है कि जहां विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थीगण/प्रतिवादीगण को परिपत्र क्रमांक प.6(19)राज.6/99, दिनांकित 20.9.2011 के अनुक्रम में कार्यवाही करते हुए अपीलार्थीगण को निर्धारित विकास शुल्क जमा कराने पर वादपत्र में अंकित जमीन बाबत पट्टा प्राप्त करने का अधिकारी माना, वहीं दूसरी ओर विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा वर्तमान प्रचलित दर से विकास शुल्क जमा कराने एवं अन्य औपचारिकताओं की नियमानुसार पूर्ति करने पर पट्टा प्राप्त करने का अधिकारी माना । दोनों ही अधीनस्थ न्यायालयों (विद्वान् विचारण न्यायालय एवं विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय) के निर्णय से यह प्रकट होता है कि दोनों ही अधीनस्थ न्यायालयों ने अपीलार्थीगण को विवादित भूमि के संबंध में पट्टा पाने का अधिकारी अवश्य माना है, लेकिन विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा "परिपत्र, 2001" की रोशनी में विकास शुल्क जमा किए जाने व प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा परिपत्र क्रमांक प.5(8)नविवि/3/99, दिनांक 25.5.2000 (एतद् पश्चात् जिसे "परिपत्र, 2000" से सम्बोधित किया जाएगा) की क्रम संख्या "ब" के तहत वर्तमान प्रचलित दर से राशि जमा कराए जाने के पश्चात् अपीलार्थी/वादी को पट्टा पाने का अधिकारी माना । ऐसी स्थिति में

इस न्यायालय के द्वारा बनाए गए निम्नांकित सारवान् विधिक प्रश्न के तहत यह तय किया जाना है कि अपीलार्थीगण विकास शुल्क की राशि वर्तमान प्रचलित दर से अथवा पूर्व आदेशित राशि के तहत राशि जमा कराने के आधार पर विवादित जमीन के क्रम में पट्टा पाने के अधिकारी हैं । इस न्यायालय द्वारा उक्त अपीलों के निस्तारण के क्रम में निम्नांकित सारवान् विधिक प्रश्न विरचित किया गया :–

> "आया विवादित भूमि के विकास शुल्क की वसूली के क्रम में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा परिपत्र दिनांकित 20.9.2001 के तहत वसूलने योग्य राशि मानकर भूल की है ?"

8. उपरोक्त सारवान् कानूनी बिन्दु के अतिरिक्त दौराने बहस अपील अन्य कोई बिन्दु, जिसके क्रम में मीमो ऑफ अपील में तथ्य अंकित हैं, के बाबत तर्क प्रस्तुत नहीं किए गए एवं न ही अन्य कोई कानूनी बिन्दु दोनों पक्षों की ओर से उठाए गए । उक्त सभी अपीलों की सुनवाई के दौरान दोनों पक्षों के विद्वान् अधिवक्तागण ने प्रकट किया कि उक्त सभी अपीलें बिना अभिलेख तलब किए सुनवाई कर निस्तारित कर दी जाएं । ऐसी स्थिति में उपरोक्त वर्णित कानूनी बिन्दुओं की परिधि व रोशनी में उक्त अपीलों का निस्तारण निम्न प्रकार किया जाता है ।

9. उपरोक्त बिन्दुओं के क्रम में योग्य अभिभाषक अपीलार्थीगण का मूल तर्क रहा कि राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 14.2.2001 एवं दिनांक 20.9.2001 के परिपत्र के अनुसार "नियम, 1981" को निरसन किए जाने के पश्चात् पूर्व में जारी "परिपत्र, 2000" के अनुरूप राशि वसूल नहीं की जा सकती, बल्कि परिपत्र दिनांकित 14.2.2001 व 20.9.2001 प्रभाव में आने के परिणामस्वरूप पूर्व में जारी परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 का अस्तित्व समाप्त हो चुका है, ऐसी सूरत में पुरानी दर के अनुरूप जो राशि जमा कराने हेतु आदेशित थी, उसी सीमा तक राशि को जमा कराने पर विवादित भूमि का पट्टा जारी किया जाए । उनका तर्क रहा कि विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय ने उक्त दोनों परिपत्रों को समझने में भूल की है । उनका यह भी तर्क रहा कि अपीलार्थीगण द्वारा दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र के प्रभाव में आने के पूर्व आदेशित राशि अपनी ओर से जमा कराने का प्रयास किया गया, लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 1/प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा उक्त राशि को अनेकानेक बहाने बनाकर राशि जमा नहीं की गई एवं उनके अनुसार विद्वान् विचारण न्यायालय प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रस्तुत

गवाह ने भी अपीलार्थीगण की ओर से राशि जमा कराने के प्रयास से इनकार नहीं किया है व विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा इस क्रम में बनाए गए विवाद्यकों को अपीलार्थी/प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध मानी है । ऐसी स्थिति में अपीलार्थीगण के द्वारा दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र आने के पूर्व राशि जमा कराए जाने के क्रम में तैयार व तत्पर रहने के परिणामस्वरूप अपीलार्थीगण पर दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र के लागू नहीं होने एवं वर्ष 2001 के परिपत्र के अस्तित्व में आ जाने से वर्ष 2000 का परिपत्र अपास्त हो जाने के परिणामस्वरूप नई दर से राशि लिए जाने के क्रम में अथवा पट्टा प्राप्त करने के क्रम में अपीलार्थीगण को अधिकारी नहीं माना है । अतः अपीलार्थीगण के विद्वान् अधिवक्ता ने विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय के आदेश को अपास्त किए जाने का निवेदन किया ।

10. इसके विपरीत प्रत्यर्थीगण के विद्वान् अधिवक्ता का तर्क रहा कि अपीलार्थीगण की ओर से विकास शुल्क जमा नहीं कराया गया है तथा राशि जमा नहीं कराने पर वर्ष 2000 के परिपत्र की क्रम संख्या "ब" के तहत नई दर से राशि जमा कराना आवश्यक है तथा परिपत्र, 2001 के प्रभाव में आने के बावजूद भी पूर्व की कार्यवाही के क्रम में पूर्व परिपत्र ही प्रभावशील है तद्नुसार अपीलार्थीगण को वर्तमान प्रचलित दर के अनुसार विकास शुल्क जमा कराने के आधार पर ही अनुतोष दिया जा सकता था । अतः उन्होंने यह निवेदन किया कि अपील अपीलार्थीगण खारिज की जाएं ।

अपील संख्या 129/13,131/13 एवं 132/13 :

11. इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थीगण के विद्वान् अधिवक्तागण का अपील संख्या 129/2013,131/2013 तथा 132/2013 के क्रम में यह तर्क रहा कि उक्त तीनों अपीलों के वादी/अपीलार्थीगण ने वादग्रस्त भूमि को बेच दिया है एवं वादी/अपीलार्थीगण ने अपनी जिरह में भी यह स्वीकार किया है कि उसने प्लाट बेच दिया है । अतः चूंकि उक्त तीनों अपीलों के अपीलार्थीगण ने वादग्रस्त प्लाट किसी अन्य को बेच दिया है, ऐसे में उक्त तीनों अपीलों के अपीलार्थीगण वादग्रस्त भूमि के स्वामी ही नहीं रहे हैं, अतः उनके क्रम में वाद कारण उत्पन्न नहीं होने के परिणामस्वरूप उक्त अपीलें गुणागण पर विवेचन किए बिना ही खारिज की जाएं ।

12. विचार किया गया ।

13. उक्त वर्णित तीनों अपीलों के क्रम में प्रत्यर्थीगण के विद्वान्

अधिवक्ता की ओर से अपील की पोषणीयता के बाबत उठाई गई उपरोक्त आपत्ति के क्रम में उक्त तीनों अपीलों के प्रकरण से संबंधित विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत प्रथम अपीलों में विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय ने यह निष्कर्ष व्यक्त किया है कि चूंकि वादी मौजूदा वाद जिस प्लाट के संबंध में लेकर आया है, वादी ने वह जमीन अन्य को बेच दी है अतः वह वाद में कोई अनुतोष प्राप्ति का अधिकारी नहीं है । इस न्यायालय की राय में, चूंकि प्रकरण किसी व्यक्ति के क्रम में अनुतोष से संबंधित नहीं होकर वादग्रस्त सम्पत्ति पर देय विकास शुल्क से संबंधित है, ऐसी सूरत में यदि सम्पत्ति का बेचान अन्य व्यक्ति के पक्ष में हो भी चुका है तब भी सम्पत्ति के साथ-साथ संबंधित व्यक्ति जिसने सम्पत्ति क्रय की है, सम्पत्ति के क्रम में व विकास शुल्क की देय राशि की बाबत लाभ व हानि को प्राप्त/वहन करने का अधिकारी है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उक्त तीनों प्रकरणों में विकास शुल्क पुरानी दर अथवा वर्तमान प्रचलित दर से लगाई जाए, का बिन्दु अन्तर्वलित होने के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थीगण के विद्वान् अधिवक्ता की ओर से अपील पोषणीयता बाबत उठाई गई आपत्ति स्वीकार योग्य नहीं होने से खारिज की जाती है तथा इस क्रम में विद्वान् प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय दिनांकित 30.3.2013 में दिया गया यह निष्कर्ष, कि वादी मौजूदा वाद जिस प्लाट के संबंध में लेकर आया है, वह उसने किसी अन्य को बेच दिया है, ऐसे में वादी इस वाद में कोई अनुतोष प्राप्ति का अधिकारी नहीं रहता, की हद तक अपास्त किया जाता है ।

14. ऐसी स्थति में वर्तमान सभी प्रकरणों की तथ्यात्मक स्थिति से यह स्पष्ट है कि जिस समय वादी/अपीलार्थीगण ने विवादित कृषि भूमि को आवासीय भूमि में परिवर्तन कराने के क्रम में आवेदन किया था उस समय पूर्व नियमों के तहत उक्त पट्टा जारी करने के क्रम में समस्त कार्यवाही एवं बकाया विकास शुल्क प्रत्यर्थी संख्या 1/प्रतिवादी संख्या 2 के कार्यालय में ही जमा होना सुनिश्चित था । "नियम, 181" परिपत्र दिनांकित 14.2.2001 के जरिए निरसित हो जाने के पश्चात् संबंधित भूमि के पट्टे के क्रम में आवेदन प्रस्तुत करने एवं प्रतिवादी संख्या 2 के कार्यालय में विकास शुल्क की अदायगी नहीं होकर उप-खण्ड अधिकारी या अन्य किसी कार्यालय में होने का प्रावधान है उस स्थिति के प्रभाव में आने के बावजूद, चूंकि वर्तमान प्रकरण दिनांक 14.2.2001 के पूर्व का है, ऐसी स्थति में

पट्टा जारी करने व विकास शुल्क जमा करने के क्रम में समस्त कार्यवाही प्रत्यर्थी संख्या 1/प्रतिवादी संख्या 2 के माध्यम से ही की जानी थी ।

15. अपीलार्थीगण के विद्वान् अधिवक्ता की ओर से परिपत्र दिनांकित 14.2.2001 व 20.9.2001 का परिपत्र प्रस्तुत कर यह प्रकट किया गया कि उक्त परिपत्र के प्रभाव में आने के परिणामस्वरूप "नियम, 181" निरसित हो जाने के कारण पूर्व नियमों के तहत जारी परिपत्र दिनांकित 26.5.2001 के तहत राशि वसूल नहीं की जा सकती है । इस क्रम में संबंधित परिपत्र दिनांकित 14.2.2001 के अवलोकन से प्रकट होता है कि उसमें व्यावृत्ति खण्ड बनाया गया है, जो निम्न प्रकार है :–

> "व्यावृत्ति – नियम 2 के अधीन किया गया निरसन प्रभावी नहीं होगा –
>
> (क) इस प्रकार निरसित नियमों के पूर्व प्रवर्तन में या किए गए किसी आदेश द्वारा, की गई कार्रवाई, जो उसके अधीन की गई हो या उससे प्रभावित हो;
>
> (ख) इस प्रकार निरसित नियमों के अधीन कोई बाध्यता या दायित्व या अधिकार या उपार्जित या उपगत कोई हक; या
>
> (ग) इस प्रकार निरसित नियमों के अधीन की गई कोई जांच, किया गया सत्यापन या इस संबंध में की गई कार्यवाही ।"

16. उपरोक्त अपवाद खण्ड के अवलोकन से प्रकट होता है कि दिनांक 14 फरवरी, 2001 के पूर्व किसी प्रकार का कृत्य प्रभाव में आ चुका है अथवा पूर्ण किया जा चुका है या किसी प्रकार का उत्तरदायित्व उद्भूत हो चुका है या किसी प्रकार की जांच प्रारम्भ हो चुकी है वह उक्त परिपत्र से प्रभावित नहीं होगी ।

17. उक्त परिपत्र की रोशनी में यदि वर्तमान प्रकरण का अवलोकन किया जाए तो प्रकट होता है कि विवादित जमीन के कृषि भूमि आवासीय भूमि में रूपान्तरण के क्रम में सभी अपीलार्थीगण/वादीगण की ओर से दिनांक 1.12.1999 को आवेदन किया गया एवं दिनांक 7.12.1999 को स्वतः निर्धारण के तहत राशि जमा कराई गई एवं तत्पश्चात् प्रतिवादी संख्या 2 के यहां बकाया राशि जमा कराने का आदेश दिया गया । यानी

कि अपीलार्थीगण/वादीगण को भूमि रूपान्तरण राशि जमा कराने के क्रम में जो भी आदेश दिया गया वह परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के पूर्व का है । दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र में क्रम संख्या 11 में अंकित है कि जिन प्रकरणों में राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956 के तहत बने हुए 1981 के रूपान्तरण नियमों के तहत कार्यवाही विचाराधीन है, उन प्रकरणों में निम्नानुसार कार्यवाही की जानी है :–

अ. जिन मामलों में 1981 के रूपांतरण नियमों के तहत रूपांतरण शुल्क तथा विकास शुल्क पूर्णतः जमा करा दिया गया है उन मामलों में अब प्रार्थियों से कोई राशि वसूल नहीं की जानी है ।

ब. जिन मामलों में 1981 के रूपांतरण नियमों के तहत रूपांतरण शुल्क ही जमा कराया गया है तथा विकास शुल्क जमा नहीं कराया गया है, ऐसे मामलों में वर्तमान नियमन दर की अंतर राशि जमा करवाई जाकर नियमन किया जाए ।

स. 1981 के भूमि रूपांतरण नियमों के तहत जो प्रकरण प्राधिकृत अधिकारियों के पास विचाराधीन हैं, उन सभी का स्थानांतरण संबंधित नगर विकास न्यास/स्थानीय निकाय को तत्काल भाव से कर दिया जाए ताकि उनमें यथोचित कार्यवाही की जा सके ।

18. परिपत्र दिनांक 26.5.2000, 14.2.2001 एवं 20.9.2001 के अवलोकन से प्रकट होता है कि जहां 14 फरवरी, 2001 के पूर्व किसी प्रकार की कोई कार्यवाही अमल में लाई जा चुकी है उस स्थिति में वह कार्यवाही यथावत् (भूमि रूपान्तरण के क्रम में) बनी रहेगी तथा पूर्व के नियम "नियम, 1981" व उसके तहत जारी परिपत्रों से शासित होगी । वर्तमान प्रकरण में परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 तक राशि जमा नहीं होने पर उक्त परिपत्र के खण्ड संख्या 'ब' के अनुसार यह प्रावधान है कि यदि किसी प्रकरण में रूपान्तरण शुल्क जमा करा दिया गया है और विकास शुल्क जमा नहीं कराया गया है तो ऐसे मामलों में वर्तमान प्रचलित नियमन दर की अन्तर राशि जमा कराकर नियमन किया जाए । यदि 14 फरवरी, 2001 को परिपत्र प्रभाव में नहीं होता उस स्थिति में उसके अपवाद खण्ड के अनुसार व परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के खण्ड 'ब' के तहत अपीलार्थीगण को प्रचलित वर्तमान दर की अन्तर राशि जमा कराने पर ही विवादित भूमि का नियमन किया जा सकता था ।

19. वर्तमान प्रकरण के तथ्यों से यह स्वीकृत है कि अपीलार्थीगण की ओर से पूर्व आदेशित राशि दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र के अनुसार किसी प्रकार का विकास शुल्क पूर्व में जमा नहीं कराया है, ऐसी स्थिति में 14 फरवरी, 2001 के परिपत्र में उपरोक्तानुसार जो अपवाद खण्ड है उसकी परिधि में अपीलार्थीगण का प्रकरण होने के परिणामस्वरूप अपीलार्थीगण को दिनांक 26.5.2000 के खंड संख्या 'ब' के तहत वर्तमान प्रचलित दर अनुसार राशि जमा कराना आवश्यक था । परिपत्र दिनांकित 14 फरवरी, 2001 के तहत मात्र "नियम, 1981" को निरसित करने का प्रभाव भविष्य में 14 फरवरी, 2001 के पश्चात् यदि भूमि के रूपान्तरण के क्रम में कोई आवेदन किया जाता है तो उस क्रम में उसका रूपान्तरण/विकास शुल्क नए कानूनी प्रावधानों के तहत शासित होगा । अपीलार्थीगण के विद्वान् अधिवक्ता द्वारा यह प्रकट किया गया कि विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 2 अपीलार्थीगण के पक्ष में व प्रत्यर्थी संख्या 1/प्रतिवादी संख्या 2 नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर के विरुद्ध तय किए हैं तथा नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर की ओर से प्रस्तुत गवाह को प्रक्रिया की जानकारी नहीं है एवं दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र के तहत कितने प्रकरणों के तहत कार्यवाही की गई है, इसको बताने में असमर्थ रहने पर विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विवाद्यक संख्या 2 को तय करते समय अपीलार्थीगण के दायित्व पर कोई चूक नहीं मानी है, ऐसी स्थिति में अपीलार्थीगण दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र से शासित नहीं हैं । इस न्यायालय की राय में, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा मात्र प्रत्यर्थी नगर विकास प्रन्यास, उदयपुर की ओर से प्रस्तुत गवाह को अन्य विचाराधीन प्रकरणों में दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र के तहत कार्यवाही की जानकारी नहीं होने के आधार पर यह माना कि उक्त गवाह को प्रक्रिया की जानकारी नहीं है । ऐसी सूरत में दिनांक 26.5.2000 के परिपत्र को लागू नहीं किया जा सकता है । इस न्यायालय की राय में, परिपत्र की व्याख्या परिपत्र की मंशा व कानून के अनुसार होना आवश्यक है न कि किसी गवाह की साक्ष्य से । यदि किसी संस्था के द्वारा नियमानुसार प्रक्रिया नहीं बनाई गई या भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रक्रिया एक समान प्रकरणों में अपनाई गई है तब भी उक्त प्रक्रिया के आधार पर जारी परिपत्र दिनांक 26.5.2000 को परिपत्र दिनांक 14.2.2001 व 20.9.2001 की रोशनी में अप्रभावी नहीं माना जा सकता, बल्कि अपीलार्थीगण की ओर से प्रस्तुत प्रकरण की अभिवचनात्मक स्थिति के अनुसार अपीलार्थीगण को

अपनी ओर से दिनांक 26.5.2000 के पूर्व राशि जमा करा दिए जाने के तथ्य को न केवल अंकित करना बल्कि उसे प्रमाणित किया जाना भी आवश्यक था । यदि अपीलार्थीगण की ओर से राशि जमा कराने हेतु निवेदन किया गया और प्रत्यर्थीगण की ओर से जानबूझ कर चूक कर राशि जमा नहीं की गई तो इस स्थिति में अपीलार्थीगण अन्य तरीके से भी संबंधित कार्यालय में अथवा उच्च अधिकारी को नियमानुसार आवेदन कर राशि जमा/प्राप्त करने के क्रम में आदेश प्राप्त कर राशि जमा करवाई जा सकती है और उक्त राशि जमा होने के पश्चात् अपीलार्थीगण से परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के खण्ड "ब" के तहत राशि वसूल नहीं की जा सकती, बल्कि उक्त परिपत्र के खण्ड "अ" के तहत पूर्ण राशि जमा मानकर प्रकरण का निस्तारण किया जा सकता था । उपरोक्तानुसार अपीलार्थीगण का प्रकरण परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के खण्ड "अ" में नहीं आने के परिणामस्वरूप खण्ड "ब" की परिधि में आने एवं परिपत्र दिनांकित 14 फरवरी, 2001 के अपवाद खण्ड के तहत व परिपत्र दिनांकित 26.5.2000 के अस्तित्व में होने तथा अपीलार्थीगण की ओर से वर्तमान प्रचलित दर से विकास शुल्क राशि जमा नहीं होने के परिणामस्वरूप अपीलार्थीगण पुरानी विकास दर के आधार पर राशि जमा करा कर अनुतोष प्राप्त करने के अधिकारी नहीं हैं । ऐसी सूरत में, इस न्यायालय द्वारा बनाए गए सारवान् विधिक बिन्दु के क्रम में यह पाया जाता है कि परिपत्र दिनांकित 20.9.2001 व 14.2.2001 के तहत विकास शुल्क वसूलने योग्य होने के क्रम में पारित निष्कर्ष में किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है । फलस्वरूप, अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत उक्त सभी अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं ।

20. उपरोक्त विवेचन के फलस्वरूप, अपीलार्थीगण की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त सभी अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

मही./मह.

शादी राम और अन्य

बनाम

कमल दत्त

तारीख 25 अप्रैल, 2013

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1 – प्रतिवादी द्वारा अपने मकान के अन्दर सेप्टिक टैंक का निर्माण – टैंक से गंदे पानी का वादी के घर की ओर रिसाव – व्यादेश के लिए वाद – निचले न्यायालयों द्वारा डिक्री – अपील – जहां तथ्यों के आधार पर निम्न न्यायालयों के निष्कर्ष एक जैसे हों वहां अपील में ऐसे निष्कर्षों को उलटकर अपील मंजूर करना सही नहीं है ।

यह नियमित द्वितीय अपील 2012 की सिविल अपील सं. 96-एस/13 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, सोलन, जिला - सोलन, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 25 सितम्बर, 2012 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादी, कमल दत्त पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में उपस्थित हुआ है । उसने शपथपत्र प्रदर्श पी.डब्ल्यू.1/ए के द्वारा अपना साक्ष्य दिया है । उसने वादपत्र में किए प्रकथनों की अभिपुष्टि की है । उसके अनुसार, प्रतिवादियों का घर फोटोग्राफ, प्रदर्श डी-1 के अनुसार 60 से 70 वर्ष पुराना है । उसने यह स्वीकार किया है कि घर की दीवार प्राकृतिक स्तर/पृथ्वी है । उसके अनुसार, उसके घर और प्राकृतिक दीवार के बीच कोई गली नहीं है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसके घर के नीचे श्याम दत्त का घर बना है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि प्रतिवादियों ने जगह छोड़ने के लिए उससे अनुरोध किया था । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि प्रतिवादियों के स्नानागार से गंदा पानी पाईप के द्वारा बाहर निकलता है । उसने यह भी कहा है कि उसने घटना स्थल पर प्रदूषण बोर्ड के अध्यक्ष और सदस्यों को बुलाया था, जिन्होंने मुझे न्यायालय में वाद फाइल करने का सुझाव दिया था । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसके घर में कोई गंदा पानी और मानवीय गंदगी का रिसाव नहीं होता और वाद प्रतिवादियों का उत्पीड़न करने के लिए फाइल

किया गया है । डी.डब्ल्यू.-1 गणेश दत्त प्रतिवादी शादी राम का मुख्तार है । उसने शपथपत्र प्रदर्श डी.डब्ल्यू.-1/ए द्वारा अपना साक्ष्य दिया है । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके पिता की आयु 74 वर्ष है और वह शारीरिक रूप से कमजोर थे । इन परिस्थितियों में प्रदर्श डी.डब्ल्यू.-1/बी जी.पी.ए. द्वारा न्यायालय में उपस्थित होने के लिए उसे प्राधिकृत किया गया है । उसने लिखित अभिकथन में अंतर्विष्ट प्रकथनों की अभिपुष्टि की है । उसने यह स्वीकार किया है कि वर्ष 1995 में उसके पिता ने स्कीम के अधीन प्रसाधन (टायलेट) बनवाया है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि पक्षकारों के घर एक-दूसरे से सटे हुए हैं । उसने यह भी स्वीकार किया है कि प्रतिवादियों के प्रसाधन का सेप्टिक टैंक वादी के घर की पिछली दीवार की तरफ है । तत्पश्चात् उसने स्वेच्छा से यह कहा कि सेप्टिक टैंक उसके घर के नीचे है । उसके अनुसार प्रदर्श पी.डब्ल्यू.3/बी-6 पर फोटोग्राफ में दर्शाया गया गंदा पानी बरसाती पानी है । प्रतिवादियों का घर ऊपर की दिशा में है । कमल दत्त पी.डब्ल्यू.-1 और कुसुम लता पी.डब्ल्यू.-2 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रतिवादियों द्वारा बनवाए गए सेप्टिक टैंक से गंदे पानी का रिसाव होता है । इससे अस्वस्थ्यकर स्थिति उत्पन्न हो रही है । स्नानागार से पानी उनके घर की ओर बहता है । पी.डब्ल्यू.-1 ने प्रदर्श पी.डब्ल्यू1/सी शिकायत द्वारा ग्राम पंचायत को समावेदन किया था । नरेश कुमार पी.डब्ल्यू.-4 ने तारीख 7 जून, 2006, की शिकायत प्रदर्श पी.डब्ल्यू.1/सी के आधार पर घटनास्थल का निरीक्षण किया था । उसने यह भी पाया कि गंदा पानी सेप्टिक टैंक से रिस रहा है और गंदा पानी वादी के घर की छत पर भी बह रहा है । उसने प्रतिवादियों से उचित उपचार करने के लिए अनुरोध किया था । यह सिद्ध करने के लिए तात्विक साक्ष्य है कि प्रतिवादियों के सेप्टिक टैंक से गंदे पानी का रिसाव हुआ है । कमल दत्त पी.डब्ल्यू.-1, कुसुम लता पी.डब्ल्यू.-2, नरेश कुमार पी.डब्ल्यू.-4 और किशन दत्त पी.डब्ल्यू.-5 ने वादी के पक्षकथन का सम्यक् रूप से समर्थन किया है । प्रतिवादियों द्वारा बनवाया गया सेप्टिक टैंक झगड़े का कारण है और वादी के लिए अस्वस्थ्यकर स्थितियां पैदा कर रहा है । वादी ने सम्यक् रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि प्रतिवादियों द्वारा बनवाए गए सेप्टिक टैंक से रिसाव होता है, यद्यपि उन्होंने अपनी भूमि पर बनवाया है और गंदा पानी की दिशा वादी के स्लेब की तरफ ही है । दोनों निचले न्यायालयों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का ठीक ही मूल्यांकन किया है । फलस्वरूप, इस नियमित द्वितीय अपील में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अन्तर्वलित नहीं हैं । तद्नुसार, ऊपर उल्लिखित चर्चा और विश्लेषण

को ध्यान में रखते हुए, इस नियमित द्वितीय अपील में कोई बल नहीं है । (पैरा 9,14,16,19 और 20)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की आर.एस.ए. सं. 5.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन नियमित द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री रोहित शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री राजीव राय

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील 2012 की सिविल अपील सं. 96-एस/13 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, सोलन, जिला - सोलन, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 25 सितम्बर, 2012 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. इस नियमित द्वितीय अपील के न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक तात्विक तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी-वादी (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए 'वादी' कहा गया है) ने अपीलार्थी-प्रतिवादियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए 'प्रतिवादी' कहा गया है) के विरुद्ध स्थायी व्यादेश हेतु वाद फाइल किया था । वादी के अनुसार, वह मौजा गाही परगना बसल, पोस्ट ऑफिस जबली, तहसील कसौली, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश में स्थित खाता खतौनी सं. 73,123, खसरा सं. 485 और 490 में समाविष्ट भूमि के ऊपर विद्यमान दो मंजिला भवन पर काबिज और स्वामी है और उसके घर से सटा हुआ प्रतिवादी का घर है जो कि वादी के घर के पीछे की तरफ स्थित है । वादी के अनुसार, प्रतिवादी ने वादी के घर की पिछली दीवार के साथ ही सेप्टिक टैंक बनवाया है और उससे वादी के घर के अन्दर की तरफ मानवीय गंदगी (पखाने) का रिसाव हो रहा है । प्रतिवादियों ने अपने स्नानागार के गंदे पानी की दिशा वादी के घर की ओर मोड़ दी है । वादी सेप्टिक टैंक से रिसने वाली मानव गंदगी की घृणित बदबू के कारण अस्वस्थ्यकर स्थिति में जीने को मजबूर है । वादी ने प्रतिवादियों से न केवल सेप्टिक टैंक हटाने के लिए कहा, बल्कि स्नानागार के गंदे पानी के बहाव का ढाल अपनी ओर करने के लिए भी अनुरोध किया, किन्तु सब निष्फल रहा । वादी ने ग्राम पंचायत, जबली और प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को भी समावेदन किया । इन परिस्थितियों में, उसने प्रतिवादियों को सेप्टिक टैंक हटाने के लिए और स्नानागार के गंदे पानी के

बहाव की दिशा अपनी ओर करने हेतु निदेश देते हुए स्थायी व्यादेश जारी करने के लिए वाद फाइल किया ।

3. वाद का प्रतिवादियों द्वारा विरोध किया गया । यह स्वीकार किया गया है कि प्रतिवादियों का घर वादियों के घर से सटा हुआ है । इस बात से इनकार किया गया है कि प्रतिवादियों ने वादी के घर की पिछली तरफ सेप्टिक टैंक बनवाया है । प्रतिवादियों के अनुसार, वादी ने अपने घर की पिछली दीवार नहीं बनवाई है, किन्तु प्राकृतिक दीवार/भूमि दीवार के रूप में प्रयोग की जाती है और उस भूमि और उसके घर के बीच कोई अन्तराल नहीं है । उनके अनुसार, उन्होंने उसके घर और प्रतिवादियों के घर के बीच जगह छोड़ने के लिए वादी से अनुरोध किया किन्तु वादी ने कोई जगह नहीं छोड़ी है । उसने जल निकास प्रणाली भी ध्वस्त कर दी है । यह दलील दी गई है कि प्रतिवादियों ने वर्ष 1982 में एक पक्का सेप्टिक टैंक बनवाया था जो प्रतिवादियों के घर की भूमि के नीचे है और वादी के घर से जुड़ा हुआ नहीं है ।

4. वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था । विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), कसौली, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश ने तारीख 18 सितम्बर, 2009 को विवाद्यक विरचित किए । विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 11 अप्रैल, 2012 को वादी के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश की डिक्री पारित की जिसके द्वारा उन्हें निर्णय की तारीख से एक माह के भीतर सेप्टिक टैंक हटाने का निदेश दिया गया और प्रतिवादियों को उनके स्नानागार के गंदे पानी के बहाव को वादी के घर के स्लेब के ऊपर से बदलने का निदेश दिया गया और उक्त पानी के बहाव के लिए उचित व्यवस्था करने का निदेश भी दिया गया ।

5. विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खण्ड), कसौली, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 11 अप्रैल, 2012 को पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर, प्रतिवादियों ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश के समक्ष अपील फाइल की । अपर जिला न्यायाधीश ने तारीख 25 सितम्बर, 2012 को अपील खारिज कर दी । अतः यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई है ।

6. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री रोहित शर्मा ने पेपर-बुक के पृष्ठ सं. 8 पर विरचित सारवान् विधि प्रश्न के आधार पर प्रबलता से यह दलील दी है कि निचले दोनों न्यायालयों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य

का गलत परिशीलन किया है और गलत अर्थ लगाया है ।

7. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री राजीव राय ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्रियों का समर्थन किया है ।

8. चूंकि विधि के सभी सारवान् प्रश्न अंतःसम्बद्ध और एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए इन पर साक्ष्य की चर्चा को दोहराने से बचने के लिए एक साथ विचार किया जा रहा है ।

9. वादी, कमल दत्त पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में उपस्थित हुआ है । उसने शपथपत्र प्रदर्श पी.डब्ल्यू.1/ए के द्वारा अपना साक्ष्य दिया है । उसने वादपत्र में किए प्रकथनों की अभिपुष्टि की है । उसके अनुसार, प्रतिवादियों का घर फोटोग्राफ, प्रदर्श डी-1 के अनुसार 60 से 70 वर्ष पुराना है । उसने यह स्वीकार किया है कि घर की दीवार प्राकृतिक स्तर/पृथ्वी है । उसके अनुसार, उसके घर और प्राकृतिक दीवार के बीच कोई गली नहीं है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसके घर के नीचे श्याम दत्त का घर बना है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि प्रतिवादियों ने जगह छोड़ने के लिए उससे अनुरोध किया था । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि प्रतिवादियों के स्नानागार से गंदा पानी पाईप के द्वारा बाहर निकलता है । उसने यह भी कहा है कि उसने घटनास्थल पर प्रदूषण बोर्ड के अध्यक्ष और सदस्यों को बुलाया था, जिन्होंने मुझे न्यायालय में वाद फाइल करने का सुझाव दिया था । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि उसके घर में कोई गंदा पानी और मानवीय गंदगी का रिसाव नहीं होता और वाद प्रतिवादियों का उत्पीड़न करने के लिए फाइल किया गया है ।

10. वादी की पत्नी कुसुम लता पी.डब्ल्यू.-2 ने शपथपत्र प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 2/ए के द्वारा अपना साक्ष्य दिया है । उसने पी.डब्ल्यू.-1 के बयान का समर्थन किया है । तथापि, उसने अपनी प्रति-परीक्षा में, यह स्वीकार किया है कि प्रतिवादियों ने अपने घर के नीचे सेप्टिक टैंक बनवाया है । उसके अनुसार, उसके घर और प्रतिवादियों के घर के बीच 1 फीट की दूरी है । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि प्रतिवादियों के सेप्टिक टैंक से उसके घर में कोई गंदा पानी और मानवीय गंदगी का रिसाव नहीं होता है ।

11. हरीश पी.डब्ल्यू.-3 ने भी एक शपथपत्र प्रदर्श पी.डब्ल्यू. 3/ए फाइल करके अपना साक्ष्य दिया है । उसने प्रदर्श पी.डब्ल्यू.3/बी-1 से प्रदर्श पी.डब्ल्यू.3/बी-6 पर घटनास्थल का फोटोग्राफ लिया था, जिनके प्रतिचित्र

(निगेटिव) जो प्रदर्श पी.डब्ल्यू.3/बी-7 से प्रदर्श पी.डब्ल्यू.3/बी-12 हैं ।

12. नरेश कुमार पी.डब्ल्यू.-4 ने भी प्रदर्श पी.डब्ल्यू.-4/ए के रूप में एक शपथपत्र द्वारा अपना साक्ष्य दिया है । उसके अनुसार, वह तारीख 6 जुलाई, 2006 को शिकायत के आधार पर तारीख 25 जुलाई, 2006 को पंचायत के अन्य सदस्यों के साथ घटना स्थल पर गया था जो वादी द्वारा की गई थी । उसने यह पाया कि प्रतिवादियों के सेप्टिक टैंक के कारण वादी के घर में मानवीय गंदगी का रिसाव हो रहा है और इससे वादी के घर में बदबू रहती है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रतिवादियों के स्नानागार से गंदा पानी वादी के घर की छत पर बह रहा था । उसने सेप्टिक टैंक हटाने के लिए प्रतिवादियों से कहा था परन्तु प्रतिवादी सहमत नहीं हुए थे । उसने अपनी प्रति-परीक्षा में यह स्वीकार किया है कि प्रतिवादियों का सेप्टिक टैंक उनके घर के नीचे है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि वादी ने अपने घर के पीछे की ओर कोई जगह नहीं छोड़ी थी ।

13. समान रूप में किशन दत्त पी.डब्ल्यू.-5 ने शपथपत्र प्रदर्श पी.डब्ल्यू.5/ए द्वारा अपना साक्ष्य दिया है । उसके अनुसार, वादी के घर में प्रतिवादियों के सेप्टिक टैंक से मानवीय गंदगी का रिसाव होता है और प्रतिवादियों के स्नानागार से पानी वादी के घर में बहता है, जिस कारण से वादी का घर अस्वस्थ्यकर बन गया है और रहने के लिए उपयुक्त नहीं है । उसने अपनी प्रति-परीक्षा में स्वीकार यह किया है कि वादी के घर की पिछली दीवार प्राकृतिक दीवार है । उसे यह जानकारी नहीं है कि प्रतिवादियों ने सेप्टिक टैंक बनवाया है या नहीं । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि वहां पानी की निकासी ठीक है ।

14. डी.डब्ल्यू-1 गणेश दत्त प्रतिवादी शादी राम का मुख्तार है । उसने शपथपत्र प्रदर्श डी.डब्ल्यू-1/ए द्वारा अपना साक्ष्य दिया है । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके पिता की आयु 74 वर्ष है और वह शारीरिक रूप से कमजोर थे । इन परिस्थितियों में प्रदर्श डी.डब्ल्यू-1/बी जी.पी.ए. द्वारा न्यायालय में उपस्थित होने के लिए उसे प्राधिकृत किया गया है । उसने लिखित अभिकथन में अंतर्विष्ट प्रकथनों की अभिपुष्टि की है । उसने यह स्वीकार किया है कि वर्ष 1995 में उसके पिता ने स्कीम के अधीन प्रसाधन (टायलेट) बनवाया है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि पक्षकारों के घर एक-दूसरे से सटे हुए हैं । उसने यह भी स्वीकार किया है कि प्रतिवादियों के प्रसाधन का सेप्टिक टैंक वादी के घर की पिछली दीवार

की तरफ है । तत्पश्चात् उसने स्वेच्छा से यह कहा कि सेप्टिक टैंक उसके घर के नीचे है । उसके अनुसार प्रदर्श पी.डब्ल्यू3/बी-6 पर फोटोग्राफ में दर्शाया गया गंदा पानी बरसाती पानी है ।

15. राजेन्द्र कुमार डी.डब्ल्यू.-2 ने भी शपथपत्र प्रदर्श डी.डब्ल्यू. 2/ए के द्वारा अपना साक्ष्य दिया है । उसने डी.डब्ल्यू.-1के बयान का समर्थन किया है । उसने यह स्वीकार किया है कि प्रतिवादियों का सेप्टिक टैंक वादी के घर की पिछली दीवार की तरफ है ।

16. प्रतिवादियों का घर ऊपर की दिशा में है । कमल दत्त पी.डब्ल्यू.-1 और कुसुम लता पी.डब्ल्यू.-2 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रतिवादियों द्वारा बनवाए गए सेप्टिक टैंक से गंदे पानी का रिसाव होता है । इससे अस्वस्थ्यकर स्थिति उत्पन्न हो रही है । स्नानागार से पानी उनके घर की ओर बहता है । पी.डब्ल्यू.-1 ने प्रदर्श पी.डब्ल्यू.1/सी शिकायत द्वारा ग्राम पंचायत को समावेदन किया था । नरेश कुमार पी.डब्ल्यू.-4 ने तारीख 7 जून, 2006, की शिकायत प्रदर्श पी.डब्ल्यू.1/सी के आधार पर घटना स्थल का निरीक्षण किया था । उसने यह भी पाया कि गंदा पानी सेप्टिक टैंक से रिस रहा है और गंदा पानी वादी के घर की छत पर भी बह रहा है । उसने प्रतिवादियों से उचित उपचार करने के लिए अनुरोध किया था ।

17. किशन दत्त, पी.डब्ल्यू.-5 द्वारा भी ऐसा ही अभिकथन किया गया है । हरीश पी.डब्ल्यू.-3 ने फोटोग्राफ सम्यक् रूप से साबित किए हैं । इन फोटोग्राफों के अनुसार भी, वादी का घर ऊपर की दिशा में है ।

18. प्रतिवादी शादी राम ने न्यायालय के समक्ष अभिसाक्ष्य नहीं दिया है । प्रतिवादियों ने गणेश दत्त डी.डब्ल्यू-1 पुत्र श्री शादी राम की परीक्षा कराई है । अभिलेख पर यह पर्याप्त साक्ष्य है कि शादी राम शारीरिक रूप से स्वस्थ है और वह मनरेगा कार्यक्रम के अधीन कार्य रहा है । प्रतिवादियों ने वादी द्वारा दिए गए साक्ष्य का खण्डन नहीं किया है कि गंदा पानी प्रतिवादियों द्वारा बनाए गए सेप्टिक टैंक से बह रहा है और स्नानागार से पानी भी वादी के घर के ऊपर गिर रहा है । वादी के लिए वाद हेतुक तब उत्पन्न हुआ जब प्रतिवादियों द्वारा उपचार हेतु कोई कदम नहीं उठाया गया, जबकि ग्राम पंचायत द्वारा अनुरोध किया गया और प्रदूषण बोर्ड ने वादी से वाद फाइल करने के लिए कहा । अन्य सह-भागीदारों को पक्षकार बनाना आवश्यक नहीं था जैसी कि अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री रोहित शर्मा द्वारा दलील दी गई है । वादी वह व्यक्ति है जो

अपने घर की ओर सेप्टिक टैंक से गंदे पानी के बहाव से प्रभावित है ।

19. अपीलार्थियों के विद्वान् अधिवक्ता श्री रोहित शर्मा ने यह भी दलील दी है कि वादी ने किसी विशेषज्ञ की परीक्षा नहीं कराई है । तथापि, यह सिद्ध करने के लिए तात्विक साक्ष्य है कि प्रतिवादियों के सेप्टिक टैंक से गंदे पानी का रिसाव हुआ है । कमल दत्त पी.डब्ल्यू.-1, कुसुम लता पी.डब्ल्यू.-2, नरेश कुमार पी.डब्ल्यू.-4 और किशन दत्त पी.डब्ल्यू.-5 ने वादी के पक्षकथन का सम्यक् रूप से समर्थन किया है । प्रतिवादियों द्वारा बनवाया गया सेप्टिक टैंक झगड़े का कारण है और वादी के लिए अस्वस्थ्यकर स्थितियां पैदा कर रहा है । वादी ने सम्यक् रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि प्रतिवादियों द्वारा बनवाए गए सेप्टिक टैंक से रिसाव होता है, यद्यपि उन्होंने अपनी भूमि पर बनवाया है और गंदे पानी की दिशा वादी के स्लेब की तरफ ही है । दोनों निचले न्यायालयों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का ठीक ही मूल्यांकन किया है । फलस्वरूप, इस नियमित द्वितीय अपील में विधि का कोई सारवान् प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है ।

20. तद्नुसार, ऊपर उल्लिखित चर्चा और विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए, इस नियमित द्वितीय अपील में कोई बल नहीं है और यह लंबित आवेदनों सहित यदि कोई हों खारिज की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

संसद् के अधिनियम

भरणपोषण आदेश प्रवर्तन अधिनियम, 1921

(1921 का अधिनियम संख्यांक 18)[1]

[5 अक्तूबर, 1921]

[2][3]*[4][व्यतिकारी राज्यक्षेत्रों]][5]*** में किए गए भरणपोषण आदेशों के [6][भारत] में और भारत में किए गए ऐसे आदेशों के व्यतिकारी राज्यक्षेत्रों में प्रवर्तन को सुकर बनाने के लिए**

अधिनियम

यत: यह समीचीन है कि [4][व्यतिकारी राज्यक्षेत्रों]], [5]** में किए गए भरणपोषण आदेशों के [6][भारत] में और भारत में किए गए ऐसे आदेशों के व्यतिकारी राज्यक्षेत्रों में प्रवर्तन को सुकर बनाया जाए ;

अत: एतद्द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :–

1. **संक्षिप्त नाम और विस्तार** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम भरणपोषण आदेश प्रवर्तन अधिनियम, 1921 है ।

---

[1] यह अधिनियम, 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1-7-1965 से) दादरा और नागर हवेली को विस्तारित और प्रवृत्त हुआ । यह अधिनियम, 1968 के अधिनियम सं. 26 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्र पर लागू होने के लिए विस्तारित किया गया ।

[2] विधि अनुकूलन आदेश, 1950 द्वारा "के अन्य भागों में" के स्थान पर प्रतिस्थपित ।

[3] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग ख राज्यों में या" शब्दों का लोप किया गया ।

[4] 1952 के अधिनियम सं. 47 की धारा 2 द्वारा "हिज मैजेस्टीज डोमिनियन एण्ड प्रोटेक्टारेट्स" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[5] विधि अनुकूलन आदेश, 1950 द्वारा "सम्मिलित होने वाले राज्य अन्य भारतीय राज्यों" शब्दों का लोप किया गया ।

[6] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग क राज्य और भाग ग राज्यों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[1][(2) इसका विस्तार [2][जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय] सम्पूर्ण भारत पर है ।]

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में जब तक कि कोई बात विषय या संदर्भ में विरुद्ध न हो :–

"संक्षिप्त अधिकारिता का न्यायालय" से मुख्य प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट का न्यायालय अभिप्रेत है ;

"आश्रित" से ऐसे व्यक्ति अभिप्रेत हैं, जिनको वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध भरणपोषण आदेश किया गया है ; उस [3][व्यतिकारी राज्यक्षेत्र] में जिसमें भरणपोषण आदेश दिया गया है प्रवृत्त विधि के अनुसार भरणपोषण करने के लिए दायी है ;

[4]["भारत" से जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय भारत का राज्यक्षेत्र अभिप्रेत है ;]

"भरणपोषण आदेश" से किसी न्यायालय द्वारा सिविल या दांडिक अधिकारिता के प्रयोग में उस व्यक्ति की जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है पत्नी या अन्य आश्रितों के भरणपोषण के लिए धनराशियों के कालिक संदाय के लिए, सम्बद्ध किए जाने के आदेश से भिन्न, कोई डिक्री या आदेश अभिप्रेत है ;

"विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

"उचित प्राधिकारी" से किसी व्यतिकारी राज्यक्षेत्र की विधि के अधीन या उसके द्वारा उन दस्तावेजों को जिनको यह अधिनियम लागू होता है, प्राप्त करने और पारेषित करने के लिए नियुक्त प्राधिकारी अभिप्रेत है ; और

---

[1] विधि अनुकूलन आदेश, 1950 द्वारा पूर्ववर्ती उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग ख राज्यों के सिवाय" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1952 के अधिनियम सं. 47 की धारा 3 द्वारा "हिज मैजेस्टीज डोमिनियन्स के भाग" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा अंत:स्थापित ।

[1][“व्यतिकारी राज्यक्षेत्र” से भारत से बाहर ऐसा देश या राज्यक्षेत्र अभिप्रेत है जिसकी बाबत यह अधिनियम धारा 3 के अधीन घोषणा के आधार पर तत्समय लागू होता है ।]

[2]* * * * *

[3][3. **व्यतिकारी व्यवस्था की घोषणा** – यदि केन्द्रीय सरकार का यह समाधान हो जाता है कि भारत के बाहर किसी देश या राज्यक्षेत्र में, भारत के न्यायालयों द्वारा दिए गए भरणपोषण आदेशों के प्रवर्तन के लिए उस देश या राज्यक्षेत्र में विधिक उपबंध विद्यमान हैं तो, केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, यह घोषणा कर सकती है कि यह अधिनियम उस देश या राज्यक्षेत्र की बाबत लागू होता है और तब वह तद्नुसार लागू होगा ।]

4. **व्यतिकारी राज्यक्षेत्रों में दिए गए भरणपोषण आदेशों का भारत में रजिस्ट्रीकरण** – (1) जहां कोई भरणपोषण आदेश, चाहे इस अधिनियम के पारित होने के पहले या पश्चात्, किसी व्यतिकारी राज्यक्षेत्र में किसी न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति के विरुद्ध दिया गया है, और उस राज्यक्षेत्र के उचित प्राधिकारी द्वारा उस आदेश की प्रमाणित प्रति केन्द्रीय सरकार को पारेषित की गई है वहां, केन्द्रीय सरकार उस आदेश के एक प्रति [4][भारत] में किसी न्यायालय के विहित अधिकारी को रजिस्ट्रीकरण के लिए भेजेगी, और, उसकी प्राप्ति पर, आदेश विहित रीति में रजिस्टर किया जाएगा ।

(2) यदि वह न्यायालय जिसके द्वारा आदेश दिया गया था, केन्द्रीय सरकार की राय में, वरिष्ठ अधिकारिता का न्यायालय है तो वह न्यायालय जिसमें ऐसा आदेश यथापूर्वोक्त इस प्रकार रजिस्ट्रीकृत किया जाना है उच्च

---

[1] 1952 के अधिनियम सं. 47 की धारा 3 द्वारा पूर्ववर्ती परिभाषा के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] विधि अनुकूलन आदेश, 1950 द्वारा अंत:स्थापित “राज्यों” की परिभाषा का 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा लोप किया गया ।

[3] 1952 के अधिनियम सं. 47 की धारा 4 द्वारा पूर्ववर्ती धारा 3 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1951 के अधिनियम सं. 1 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा “राज्यों” के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

न्यायालय होगा, और यदि उसकी राय में वह न्यायालय वरिष्ठ अधिकारिता का न्यायालय नहीं था, तो संक्षिप्त अधिकारिता का न्यायालय होगा ।

5. **भारत में दिए गए भरणपोषण आदेशों का पारेषण** – जहां [1][भारत] में न्यायालय ने चाहे इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात्, किसी व्यक्ति के विरुद्ध भरणपोषण आदेश दिया है, और उस न्यायालय में यह साबित किया गया है कि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है किसी व्यतिकारी राज्यक्षेत्र का निवासी है, तो न्यायालय उस राज्यक्षेत्र के उचित प्राधिकारी को पारेषण के लिए केन्द्रीय सरकार को आदेश की एक प्रमाणित प्रति भेजेगा ।

6. **संक्षिप्त न्यायालयों की व्यतिकारी राज्यक्षेत्र में निवासी व्यक्तियों के विरुद्ध अनन्तिम भरणपोषण आदेश देने की शक्ति** – (1) जहां [1][भारत] में संक्षिप्त अधिकारिता के किसी न्यायालय को किसी व्यक्ति के लिए भरणपोषण आदेश के लिए आवेदन किया जाता है, और यह साबित किया जाता है कि वह व्यक्ति किसी व्यतिकारी राज्यक्षेत्र में निवासी है, वहां उस व्यक्ति की अनुपस्थिति में यदि न्यायालय का साक्ष्य को सुनने के पश्चात् आवेदन के न्यायानुमत होने के बारे में समाधान हो जाता है तो, वह ऐसा आदेश दे सकता है जो वह तब दे सकता जब ऐसा व्यक्ति जानबूझकर न्यायालय में उपस्थित होने की उपेक्षा करता ; किन्तु ऐसी दशा में आदेश अनन्तिम ही होगा और तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक ऐसे राज्यक्षेत्र में सक्षम न्यायालय द्वारा उसकी पुष्टि न की जाए ।

(2) प्रत्येक साक्षी का जिसका ऐसे आवेदन पर परीक्षण किया जाता है साक्ष्य लेखबद्ध किया जाएगा और ऐसा अभिसाक्ष्य उसको पढ़कर सुनाया जाएगा और उसके द्वारा हस्ताक्षरित होगा ।

(3) जहां ऐसा आदेश दिया जाता है वहां, न्यायालय केन्द्रीय सरकार को उस व्यतिकारी राज्यक्षेत्र के, जिसमें वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है निवास करता है ऐसा अधिकथित है, उचित प्राधिकारी को पारेषण के लिए इस प्रकार लिए गए अभिसाक्ष्य और आदेश की प्रमाणित

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा ''राज्यों'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

प्रति उन आधारों के कथन के साथ जिन पर, यदि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है यदि उस पर समन सम्यक्त: तामील किया जाता और वह सुनवाई पर उपसंजात होता तो जिन आधारों पर आदेशों के दिए जाने का विरोध होता और ऐसी जानकारी के साथ जो न्यायालय के पास उस व्यक्ति की पहचान और उसका ठौर ठिकाना अभिनिश्चित करने को सुकर बनाने के लिए हो, भेजेगा ।

(4) जहां ऐसा कोई अनन्तिम आदेश किसी व्यतिकारी राज्यक्षेत्र में किसी न्यायालय के समक्ष पुष्टि के लिए आया है और वह आदेश, उस न्यायालय द्वारा संक्षिप्त अधिकारिता के उस न्यायालय को जिसने आदेश दिया था अतिरिक्त साक्ष्य लेने के प्रयोजन के लिए प्रेषित किया गया है, वहां, वह न्यायालय, विहित सूचना देने के पश्चात् मूल आवेदन के समर्थन में जैसे साक्ष्य लिया जाता है उसी रीति में और वैसी ही शर्तों के अधीन साक्ष्य लेने की कार्यवाही करेगा ।

(5) यदि ऐसा साक्ष्य सुनने वाले न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि आदेश नहीं किया जाना था तो न्यायालय उस आदेश को विखंडित कर सकता है किन्तु किसी अन्य दशा में अभिसाक्ष्य केन्द्रीय सरकार को भेजा जाएगा और मूल अभिसाक्ष्य के समान रीति में निपटाया जाएगा ।

(6) इस धारा के अधीन दिए गए किसी आदेश की पुष्टि संक्षिप्त अधिकारिता के न्यायालयों की उस आदेश में फेरफार करने या उसे खंडित करने की शक्ति को प्रभावित नहीं करेगी :

परन्तु फेरफार या विखंडन का आदेश करने के पश्चात्, न्यायालय उस व्यतिकारी राज्यक्षेत्र में जिसमें मूल आदेश की पुष्टि की गई थी या जिसको वह पुष्टि के लिए भेजा गया था, उचित प्राधिकारी को पारेषण के लिए उसकी एक प्रमाणित प्रति केन्द्रीय सरकार को भेजेगा, और मूल आदेश में फेरफार करने वाले आदेश की दशा में, आदेश प्रभावशील नहीं होगा जब तक कि मूल आदेश के समान रीति में उसकी पुष्टि न हो जाए ।

7. **संक्षिप्त अधिकारिता के न्यायालय की भारत से बाहर किए गए भरणपोषण आदेश की पुष्टि करने की शक्ति** – (1) जहां किसी व्यतिकारी राज्यक्षेत्र में न्यायालय द्वारा भरणपोषण का आदेश किया गया है और आदेश

अनन्तिम ही है, और [1][भारत] में संक्षिप्त अधिकारिता के न्यायालय द्वारा पुष्टि किए जाने तक उसका कोई प्रभाव नहीं है, और साक्षियों के अभिसाक्ष्य और जिन आधारों पर उस आदेश का विरोध किया जा सकता था उनके कथन के साथ आदेश की एक प्रमाणित प्रति केन्द्रीय सरकार को पारेषित की गई है, और केन्द्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है [1][भारत] में निवासी है तो, केन्द्रीय सरकार इस अध्यपेक्षा के साथ कि उस व्यक्ति से यह मांग करते हुए एक समन जारी किया जाए, कि वह एक हेतुक दर्शाए कि क्यों उस आदेश की पुष्टि न की जाए, संक्षिप्त अधिकारिता के न्यायालय के विहित अधिकारी को उक्त दस्तावेज भेज सकती है, और, ऐसे दस्तावेजों और अध्यपेक्षा की प्राप्ति पर, न्यायालय समन जारी करेगा और उसे ऐसे व्यक्ति पर तामील कराएगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन जारी किया गया समन सभी प्रयोजनों के लिए न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक दांडिक अधिकारिता के प्रयोग में जारी किया गया समन समझा जाएगा ।

(3) वह व्यक्ति जिसे समन जारी किया गया था सुनवाई में अपनी प्रतिरक्षा में ऐसी कोई बात रख सकता है जो वह आरंभिक कार्यवाही में रख सकता था यदि वह उसका पक्षकार होता, किन्तु इससे भिन्न कोई प्रतिवाद नहीं होगा, और अनन्तिम आदेश देने वाले न्यायालय का उन आधारों का कथन करते हुए, जिन पर यदि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है कार्यवाहियों का पक्षकार होता तो जिन पर आदेश का विरोध कर सकता था, दिया गया प्रमाणपत्र इस बात का निश्चायक साक्ष्य होगा कि वे आधार ही ऐसे आधार हैं जिन पर आक्षेप किया जा सकता है ।

(4) यदि वह व्यक्ति जिस पर समन तामील किया गया है सुनवाई में उपसंजात नहीं होता है, या उपसंजात होता है किन्तु न्यायालय का यह समाधान करने में असफल रहता है कि आदेश की पुष्टि नहीं की जानी चाहिए तो न्यायालय, भारत में तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा उसकी शक्ति पर अधिरोपित वित्तीय सीमा के होते हुए भी, बिना उपान्तरों के या

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "राज्यों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

ऐसे उपान्तरों सहित जो न्यायालय साक्ष्य सुनने के बाद उचित समझे आदेश की पुष्टि कर सकता है :

परन्तु इस धारा के अधीन कोई राशि भरणपोषण के रूप में अनन्तिम आदेश की प्रस्थापित दर से अधिक दर पर अधिनिर्णीत नहीं की जाएगी, या इस रूप में वसूल नहीं की जा सकेगी ।

(5) यदि वह व्यक्ति जिसको समन जारी किया गया था सुनवाई में उपस्थित होता है और न्यायालय का यह समाधान कर देता है कि प्रतिवाद करने के प्रयोजन के लिए यह आवश्यक है कि अतिरिक्त साक्ष्य लेने के लिए मामले को उस न्यायालय को प्रेषित किया जाए जिसने अनन्तिम आदेश दिया था, तो न्यायालय उस प्रयोजन के लिए व्यतिकारी राज्यक्षेत्र के उचित अधिकारी के माध्यम से उस न्यायालय को पारेषण के लिए केन्द्रीय सरकार को अभिलेख की प्रमाणित प्रति भेज सकता है और कार्यवाहियों को स्थगित कर सकता है ।

(6) जहां इस धारा के अधीन किसी अनन्तिम आदेश की पुष्टि की गई है वहां, उसमें उसी रीति में फेरफार या विखंडन किया जा सकता है मानो वह मूलत: पुष्टि करने वाले न्यायालय द्वारा दिया गया है, और जहां विखण्डन या फेरफार करने के लिए आवेदन पर न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मामले को अतिरिक्त साक्ष्य लेने के प्रयोजन के लिए उस न्यायालय को प्रेषित करना आवश्यक है जिसने अनन्तिम आदेश दिया था वहां, न्यायालय उस प्रयोजन के लिए व्यतिकारी राज्यक्षेत्र के उचित अधिकारी के माध्यम से उस न्यायालय को पारेषण के लिए केन्द्रीय सरकार को अभिलेख की प्रमाणित प्रति भेज सकता है, और कार्यवाहियों को स्थगित कर सकता है ।

8. **भरणपोषण आदेशों का प्रवर्तन** – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई आदेश किसी उच्च न्यायालय में रजिस्ट्रीकृत किया गया है वहां, आदेश का ऐसे रजिस्ट्रीकरण की तारीख से वही बल और प्रभाव होगा और उस पर ऐसी सभी कार्यवाहियां की जा सकेंगी मानो वह उच्च न्यायालय से उसकी सिविल अधिकारिता के प्रयोग में, या उसी न्यायालय के अधीनस्थ ऐसे सिविल न्यायालय में जो इस निमित्त उच्च न्यायालय द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाए,

मूलत: अभिप्राप्त आदेश है, और उस न्यायालय को तद्नुसार आदेश को प्रवृत्त कराने की शक्ति होगी ।

(2) संक्षिप्त अधिकारिता का कोई न्यायालय जिसमें इस अधिनियम के अधीन आदेश रजिस्ट्रीकृत किया गया है या जिसके द्वारा कोई आदेश इस अधिनियम के अधीन पुष्ट किया गया है, और ऐसे न्यायालय के अधिकारियों को, ऐसी शक्ति होगी और वे ऐसे कर्तव्यों का पालन करेंगे जो आदेश के प्रवर्तन के प्रयोजन के लिए, विहित किए जाएं ।

9. **भरणपोषण के रूप में अधिनिर्णीत राशियों के पारेषण के लिए प्रभार और अन्य खर्चों और प्रभारों का संदाय** – इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार भरणपोषण के आदेश को रजिस्टर करने या उसकी पुष्टि करने में न्यायालय, यह निदेश देगा कि उस न्यायालय को, जिससे, यथास्थिति, आदेश प्राप्त हुआ है या जिसमें अनन्तिम आदेश दिया गया है, भरणपोषण के रूप में अधिनिर्णीत राशि के पारेषण के प्रभारों का वहन वह व्यक्ति करेगा जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है या आदेश की पुष्टि की गई है, और उससे भरणपोषण के रूप में अधिनिर्णीत राशि के अतिरिक्त वसूल किया जाएगा और इसके अतिरिक्त, और उसी रीति में ऐसे अन्य खर्चे और प्रभार वसूल किए जाएंगे जो न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत या उद्गृहीत किए जाएं ।

10. **न्यायालय के अधिकारियों द्वारा हस्ताक्षरित दस्तावेजों का सबूत** – इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, ऐसे दस्तावेज के बारे में जिसका [1][भारत] से बाहर किसी न्यायालय के न्यायाधीश या अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होना तात्पर्यित है, जब तक प्रतिकूल साबित न किया जाए, जिस व्यक्ति के हस्ताक्षर किए गए प्रतीत होते हैं उसके न्यायिक या शासकीय हैसियत के हस्ताक्षर के सबूत के बिना यह समझा जाएगा कि वह इस प्रकार हस्ताक्षरित है, और किसी न्यायालय के अधिकारी के बारे में जिसके द्वारा दस्तावेज हस्ताक्षरित है जब तक प्रतिकूल साबित न किया जाए, यह समझा जाएगा कि वह उस दस्तावेज को हस्ताक्षरित करने के लिए न्यायालय का उचित अधिकारी था ।

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "राज्यों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

11. **अभिसाक्ष्य का साक्ष्य होना** – किसी व्यतिकारी राज्यक्षेत्र में किसी न्यायालय में लिए गए अभिसाक्ष्य, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, इस अधिनियम के अधीन संक्षिप्त अधिकारिता के न्यायालयों के समक्ष कार्यवाहियों से साक्ष्य में ग्रहण किए जाएंगे ।

12. **नियम बनाने की शक्ति** – [1][(1)] केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के प्रयोजन के लिए [2][राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियम[3] बना सकती है] और विशिष्टतया इस अधिनियम के अधीन की गई किसी बात के लिए खर्चे या प्रभार के उद्ग्रहण के लिए और उन सभी विषयों के लिए जो विहित किए जाने के लिए निदिष्ट या अनुज्ञात हैं, नियम बना सकती है ।

[4][(2) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।]

---

[1] 1983 के अधिनियम सं. 20 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15.3.1984 से) धारा 12 की उपधारा (1) के रूप में पुन:संख्यांकित किया गया ।

[2] 1983 के अधिनियम सं. 20 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15.3.1984 से) "नियम बना सकेगी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] ऐसे नियमों के लिए देखिए भारत का राजपत्र, 1923, भाग 1, पृ. 1263.

[4] 1983 के अधिनियम सं. 20 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15.3.1984 से) अंत: स्थापित ।